शाश्वत सुख का मार्गदर्शक मासिकपत्र

आत्मधर्म

卐 : संपादक : **जगजीवन बाउचंद दोशी** (सावरकुंडला) 卐

मई : १९६३ ☆ वर्ष उन्नीसवाँ, बैशाख, वीर नि०सं० २४८९ ☆ अंक : १

संसारी जीव को भव भ्रमण और दुःख क्यों है ?

व्यवहारिक धंधों फँसे, करे न आतम ज्ञान।
यही कारण जग जीव ये, पावे नहिं निर्वाण॥५२॥

(योगींद्रदेव)

जो आत्मस्वरूप के ज्ञान से रहित हैं, सर्वज्ञदेव कथित पदार्थों का विपरीत श्रद्धान करनेवाले हैं, हित-अहित के विवेक से रहित और देहादि-रागादि में एकताबुद्धिरूप मोह से मोहित हैं, वे संसार का व्यवहार कि जो आधि (मानसिक पीड़ा), व्याधि (रोग, वृद्धत्व, जन्म-मरणादि की चिंता) और उपाधि (बाह्य परपदार्थों के संयोग-वियोग की चिंता) रूप है, उस अज्ञानमय व्यवहार में अटक जाते हैं। पर में कर्तृत्वरूप मिथ्या अभिप्राय के कारण पर से भला-बुरा होना मानते हैं, पर को इष्ट-अनिष्टरूप देखते हैं;—इसप्रकार मोह के वश खेदखिन्न होते रहते हैं।

अपने असली स्वरूप को भूलकर और पर को अपना मानना,—ऐसे मोह के कारण जगत के अज्ञानी जीव दुःखी हैं।

वार्षिक मूल्य
तीन रुपया

जन्म जयंती [२१६] विशेषांक

एक अंक
चार आना

श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

★ ★ ★ ★ ★ ★ ★ ★ ★ ★ ★ ★ ★ ★ ★ ★ ★ ★ ★ ★

नया प्रकाशन

समयसार प्रवचन भाग ४

कर्ता-कर्म अधिकार पर पूज्य श्री कानजी स्वामी द्वारा विस्तार से प्रवचन (गाथा ६९ से १४४) अंधकार हटाना नहीं पड़ता, प्रकाश होते ही अंधेरा उत्पन्न नहीं होता; इसप्रकार निर्मल तत्त्वज्ञान का अभ्यास करके भेदविज्ञान ज्योति अपनी आत्मा में प्रगट करने से अनादिकालीन महान भूल मिट जाती है। श्री समयसारजी शास्त्र में अत्यन्त अप्रतिबुद्ध अपूर्व तत्त्वज्ञान समझाया है।

कर्ता-कर्म के संबंध में जीव की भूल होने से मिथ्या अभिप्रायवश अज्ञानी जीव दुःखी हो रहा है, वह भूल कैसे मिटे, स्वानुभव कैसे हो, यह बात स्पष्ट करके समझाई है।

पृष्ठ संख्या ५६४, कपड़े की जिल्द, मूल्य (लागत से भी बहुत कम है) ४-०, पोस्टेज १-६० अलग।

अनुभवप्रकाश

लेखक, अनुभवी विद्वान श्री दीपचंदजी कासलीवाल जो २०० वर्ष पूर्व हो गये। इस ग्रंथ में आत्मानुभव को सुगम-रीति से समझाया गया है। पृष्ठ १२६, मूल्य ०-३५ पोस्टेज अलग।

शासन प्रभाव

जिसमें पूज्य कानजी स्वामी का जीवन चरित्र भी है। मूल्य ०.१२।

★ ★ ★ ★ ★ ★ ★ ★ ★ ★ ★ ★ ★ ★ ★ ★ ★ ★ ★ ★

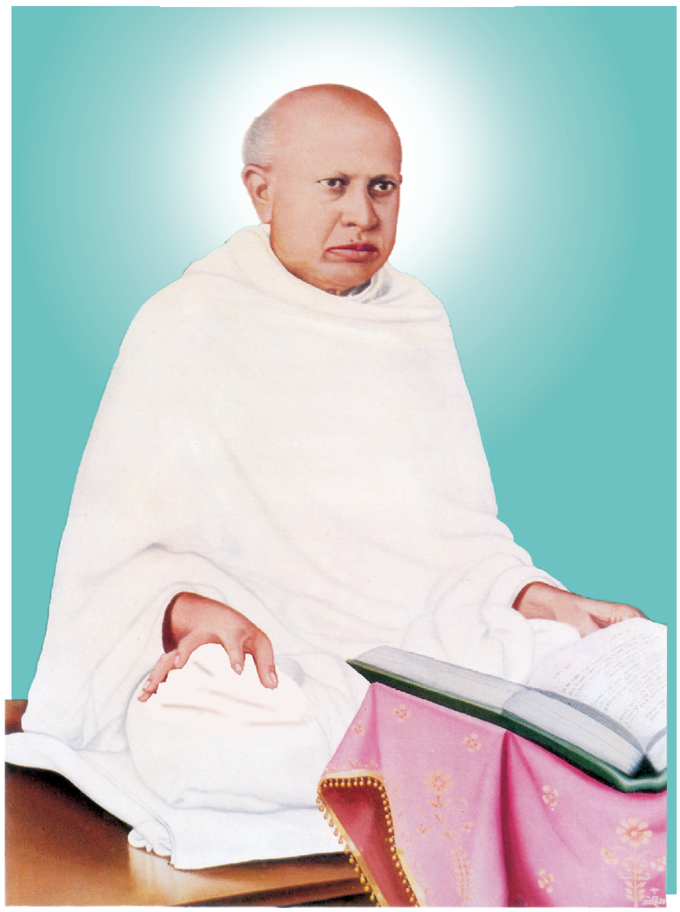

अध्यात्मयोगी सत्पुरुष श्री कानजी स्वामी
[७४ वीं जन्म जयंती]

शाश्वत सुख का मार्गदर्शक मासिकपत्र

आत्मधर्म

卐 : संपादक : **जगजीवन बाउचंद दोशी** (सावरकुंडला) 卐

मई : १९६३ ☆ वर्ष उन्नीसवाँ, बैशाख, वीर नि०सं० २४८९ ☆ अंक : १

धन्य अवतार!

हे परम उपकारी गुरुदेव! सत्य के अवतार........

आपश्री का अवतार धन्य है, आपकी ७४वीं जन्म-जयंती मनाते हुए हम भक्तों को बहुत हर्ष होता है। समर्थ दिगम्बर संत पूर्वाचार्यों के वीतरागी वैभव से भरपूर शास्त्रादि हमको मिलने पर भी उनके रहस्य वेत्ता के अभाव में, अज्ञान अंधकार की गहरी छाया व्याप्त हो रही थी, गाढ़ अंधेरा था, ऐसे अवसर में आपका पुनीत जन्म हुआ, आपने वीतराग सम्यक् अनेकांतमय नि:शंक मार्ग सम्हाल कर सूक्ष्म दृष्टि द्वारा श्रुतसागर का मंथन कर अमृत निकाला और भव्य जीवों को परोसा। 'संत के बिना अंत की बात का अंत पा सकते नहीं'—इस सूत्र की सिद्धि आपमें दृष्टिगत होने पर आपकी सुमधुर अध्यात्मरस से भरपूर सुमधुर वाणी को सुनने के लिये आपके समीप भारत के कौने-कौने से हजारों धर्म जिज्ञासु आते हैं। आप उनको उदारचित्त से निर्मल ज्ञान गंगा के पावन जल का पान कराते हैं, आप पराधीनता की निवृत्ति, स्वाधीनता की प्राप्ति के प्रणेता हो, ऐसा समझकर आपका शरण ग्रहण करनेवाले सनाथ हुए हैं। आपके परमोपकार को याद करके आपके इस जन्म-जयंती दिवस पर आपको हमारा भक्तिपूर्वक शत-शत वंदन है।

७४वीं जन्म-जयंती उत्सव पर

आभार-दर्शन

हे सिद्धपद प्राप्ति के पंथ में विहार करता परम पावन पथिक परमोपकारी पूज्य गुरुदेव

(१) कल्याणमय, उत्तम, मंगल, और शरणरूप चिन्मुद्रांकित अध्यात्मतत्त्व के दिव्य संदेश द्वारा अध्यात्म शिक्षा के सुवर्ण निधान आपने खुले किये-प्रकाशित किये, कहाँ से! निज आत्मसृद्धि में से और इससे प्रभावित तथा प्रमोदित हुए अनेक भव्यों।

(२) प्रवाहित किये सम्यक् श्रुतामृत के प्रवाह, जिससे शुद्ध हुए हृदय उस श्रुतामृत में स्नान करनेवाले भव्यों के।

(३) गुंजाये नाद मधुर श्रुतज्ञान की बंसरी का, कि जिसके द्वारा मंत्रमुग्ध बनकर नाच उठे अनेक मुमुक्षुओं के हृदय।

(४) बोये धर्म बीज भव्यों के आत्मक्षेत्र में और बरसाये अमृतरस मेघ, जिससे संपोषण मिला उस धर्म बीज को।

(५) प्रगट किये महान वैभव विराग विभूति का, जिससे उसकी प्राप्ति कर्ता को सचमुच प्रतिभास हुआ आत्म वैभव की महानता और दुन्वी वैभव की अति तुच्छता।

(६) दिया तादृश भावभासन सहजानंद परिणति का, आपकी अनुपम स्वरूप सम्पदा द्वारा।

(७) उतारे–नष्ट किये मिथ्यात्व विष, अमोघ आत्मस्पर्शी कल्याणकारिणी वाणी की मुरली द्वारा।

(८) नष्ट किया अज्ञानांधकार, अपने ज्ञानभानु के प्रकाशमय किरणों के द्वारा।

(९) प्रदर्शन में रखे अध्यात्म श्रुत सागर में से चुन–चुनकर अनेक महा मूल्यवान सिद्धांत भौक्तिकों।

(१०) अमंदतया प्रतिपादन किया कि साधित होता है, आत्महित मात्र निज शुद्धात्मद्रव्य का आलम्बन के बल द्वारा ही।

(११) कराई अपेक्षा स्वद्रव्य–स्वभाव की और उपेक्षा सर्व परद्रव्य–परभाव की।

(१२) प्रकाशित किया निडर–निर्भयतया वीतरागी सत्यमार्ग और की अपूर्व धर्म प्रभावना।

(१३) दर्शाया महात्म्य, परिवर्तनशील संसार में अपरिवर्तनशील आत्मतत्त्व का।

(१४) शमन किये संसार के त्रिविध ताप, अंतरंग में से झरते शांति के अमृतरस बिंदुओं द्वारा।

(१५) बनाया सुलभ मोक्षपुरी पहुँचने का मार्ग, बनकर अध्यात्म कप्तान।

(१६) पावन किये हमारे अंतरंग आँगन, पधराकर अनंत सिद्ध भगवंतों को।

(१७) सुनाया समयसार कर्ताकर्म और बंध अधिकार और दिया अकर्ता ज्ञायकस्वरूप के संमुख होने का दिव्य संदेश, संदेश अबंध स्वभाव का।

(१८) किया स्वाध्याय नियमसार का शुद्धभाव अधिकार प्रवचन में गाया सतत परमपारिणामिकभाव।

उपरोक्त सभी विशिष्टताओं के कारण हम आपके अत्यंत ऋणी हैं, अर्थात् हम अपूर्व और अत्यंत उपकार का प्रति उपकार करने में सर्वथा असमर्थ कर्जदार हैं और इसलिये आपके चरणकमल में उल्लसित भक्तिभाव से वंदन–नमन करके अंतर के गहरे भाव सहित आपका अत्यंत उपकार मानते हैं। इस ७४ वीं वर्षगाँठ के उत्सव में हम परमात्मा के सामने भावना भाते हैं कि चैतन्य विहारी वीतरागी मार्ग प्रकाशक तथा प्रभावक आप श्री सत्पुरुष पूज्य गुरुदेव की जय हो।

रामजी माणेकचंद दोशी
प्रमुख
श्री दिगम्बर जैन संघ राजकोट तथा
श्री खेमचंद जेठालाल शेठ

सुख

— तुम्हें सुख चाहिये?
हाँ।
— स्थायी सुख की आवश्यकता है या क्षणिक की?
स्थायी सुख चाहिये।
— ठीक है; जानते हो वह सुख कैसे प्राप्त होता है?
नहीं।
— तो सुख के कारण को जाने बिना उसकी प्राप्ति कहाँ से होगी?
नहीं हो सकती।
— इसलिये, यदि सुखी होने की इच्छा हो तो सुख का कारण जानना चाहिये?
प्रभो! सुख का कारण क्या है?
— हे जिज्ञासु सुन! सुख आत्मा में है; इसलिये अतीन्द्रियज्ञानानन्दमय इस आत्मा को जानकर नि:संशय होकर उसमें एकाग्र होना ही सुख का कारण है।

समाधि मरण के अपूर्व अवसर पर

सच्ची वीरता

(स्व० कविवर पंडित बनारसीदासजी)

[आयु के अंत समय कुछ दूर था, कविवर की शीघ्र मृत्यु क्यों नहीं होती, कुछ धनादिक के मोह के कारण पंडितजी का जीव यह मनुष्य पर्याय नहीं छोड़ता, ऐसी अक्रम की मिथ्या कल्पना और पंडितजी को अन्यथा मानने की बात सुनकर संयोग दृष्टिवान संबंधी लोगों पर करुणा बुद्धिवश पंडित जी ने लिख दिया था कि सत्य बात यह है—]

ज्ञान कुतक्का हाथ मारि अरि मोहना,
प्रगट्यो रूप अरूप अनंत से सोहना;
यह पर्जय को अंत सत्य कर मानना,
चलो बनारसिदास फैर नहीं आवना।

सुरति लगी शिव मांही हम बैठे अपने मौनसौं,
दिन दस के महिमान जगत जन बोलि बिगारै कौनसों;
गये विलाय भरमके बादल परमारथ पथ पौनसों,
अब अंतरगति भई हमारी परचै राधा रौनसों।

[सम्यग्आराधनारूपी रानी–परिणति उसका स्पर्शन अनुभवन करता हूँ।]

प्रगटी सुधापान की महिमा मन नहिं लागै वौनसों,
क्षण न सुहय और रस फीके रुचि साहिबकै लौनसों;

[अंतरंग में निज परमात्म तत्त्व में रुचि–लीनतारूप दृढ़ स्वावलम्बन के बल से अन्य रस सब फीके हो गये हैं, क्षणमात्र भी संसारिक विषमता में मन नहीं लगता]

रहो अघाय पाय सुख सम्पत्ति को निकसे निज भौनसों,
सहज सुभाव सद्गुरु की संगति सुरजे आवागौंनसों।

परम पूज्य आध्यात्मिक संत श्री कानजीस्वामी की
७४ वीं जन्मजयंती के सुअवसर पर

अभिनंदन

श्री सेठ खेमचंद जेठालाल शाह

मुक्तिपंथ के पावन पथिक!

आपश्री तो मुक्तिपंथ में अत्यंत वीरतापूर्वक प्रयाण कर ही रहे हो तथा जगत के भव्य जीवों को आत्मा की सम्पूर्ण शुद्धिरूप मुक्ति का परम मंगलमय संदेश सदैव दे रहे हो। अतः हम सब अत्यंत भक्तिभाव से अभिवंदन करके आपश्री का हार्दिक अभिनंदन करते हैं।

पूर्ण स्वातंत्र्य के महान पुजारी!

जगत के सर्वद्रव्य, उनके अनंत गुण, उनकी समय-समय की परिणति निश्चय से निरपेक्ष है, उनके उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य भी पूर्ण स्वतंत्र है। इसप्रकार वस्तु का यथार्थ स्वरूप समझाकर, आप जगत के जीवों को पूर्ण स्वातंत्र्य का बोधपाठ सिखाते हो, अतः हम आपका आंतरिक उत्साहित भाव से अभिनंदन करते हैं।

निज शुद्ध चैतन्य विहारी!

परद्रव्य और परभाव में एकताबुद्धि से विचरना संसार परिभ्रमण का कारण है तथा स्वद्रव्य-स्वभाव में एकाग्रतापूर्वक विचरना मोक्ष का कारण है—इसप्रकार का उपदेश देते हुये भी आप सदा निज शुद्ध चैतन्य में विचरने में अत्यानन्द मानते हो, अतः आपको हमारा अभिनंदन है।

सद्धर्म प्रकाशक, प्रचार और प्रभावक

आपने अध्यात्म उपदेश द्वारा भगवान महावीर के परम वीतरागी धर्म का प्रकाश करके, उसका प्रचार और प्रसार किया, अनेक भव्य जीवों का परम हित किया। इसप्रकार सद्धर्म की अतिउज्जवल प्रभावना की, इसलिये हम आपका अत्यंत विनीत भाव से अभिनंदन करते हैं।

त्रिकाली ज्ञायकस्वभाव का परम आदर करनेवाले संत!

व्यवहारनय है, उसका विषय भी है, तथापि धर्म करने के लिये-शुद्धता प्रगट करने के लिये वह अभूतार्थ है अर्थात् आश्रय करने योग्य नहीं है। इसलिए आप फरमाते हैं कि प्रमत्तभाव तो आत्मा का वास्तविक स्वरूप है ही नहीं, किंतु अप्रमत्तभाव भी आत्मा का त्रिकाली पारमार्थिक

स्वरूप नहीं है, अत: उसका भी परमार्थत: आदर नहीं करके केवल त्रिकाली ज्ञायकस्वभाव का ही आप परम आदर करते हो और अन्य को भी ऐसा ही बोध देते हो। अत: आपको हमारा सादर अभिनंदन है।

हमारी आंतरिक भावना

आपश्री की ७४वीं जन्म-जयन्ती के शुभ अवसर पर हमारी यह आंतरिक भावना है कि जिस प्रकार ७+४=११ का अंक अविभाज्य-अखंडित है, उसीप्रकार आपके द्वारा जिनशासन प्रभावना का प्रवाह अखंडित बहता रहे। आप अखंडित ज्ञानदर्शन द्वारा अखंड ज्ञेयों के सदा ज्ञातादृष्टा रहें तथा अखंडित सामर्थ्य द्वारा अखंडित आनन्द के भोक्ता बनें।

क्रांतिकारी पुनीत उपदेष्टा

(श्री पं० पवनकुमारजी शास्त्री न्यायतीर्थ, तारंगा)

श्री पूज्य स्वामीजी इस युग के महान पुण्यशाली क्रांतिकारी अध्यात्म धर्म के अद्वितीय उपदेशक हैं। पूज्य स्वामीजी के कारण से मेरे ज्ञान में परिवर्तन हुआ है। मैं करीब १५ वर्ष से सोनगढ़ का साहित्य पढ़ता हूँ। तीन बार सोनगढ़ हो आया हूँ, मुझे अपूर्व शांति मिली। मैं स्वामीजी के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ। स्वामीजी शतायु प्राप्त कर इससे भी अधिक वीतराग धर्म की प्रभावना करें। मैं स्वामीजी के विरोध में प्रगट होनेवाले सभी साहित्य को मँगाकर पढ़ता हूँ। विरोधियों ने स्वामीजी को व उनके साहित्य को ठीक समझा होता तो विरोध नहीं करते। स्वामीजी दिगम्बर धर्म व साहित्य के विरोध में नहीं बोलते। तथा न एकांत से कथन करते हैं। उनकी विवक्षा को समझने की जरूरत है। पूर्ण साहित्य पढ़ने पर या तो परिचय करने पर सर्व भ्रम दूर हो जायेंगे।

सर्व द्रव्यों में उत्तम

यद्यपि यह चिद्रूप-ज्ञानघन आत्मा ज्ञेय (ज्ञान का विषय) और दृश्य (दर्शन का विषय) है, ऐसा होने पर भी वह स्वभाव से ही पदार्थों को जानने-देखनेवाला है। किंतु अन्य कोई पदार्थ ऐसा नहीं कि जो ज्ञेय व दृश्य होने पर भी ज्ञाता-दृष्टा भी हो, इसलिये यह चिद्रूप समस्त द्रव्यों में उत्तम है।

शत-शत प्राप्त अभिनंदन पत्रों में एक महत्वपूर्ण—

ससंग तीर्थयात्रा में देहली प्रवास के सुअवसर पर प्रदत्त

आत्मार्थी, आजन्मब्रह्मचारी, अध्यात्म-रसिक, आत्मधर्म-पथिक, अध्यात्म प्रसारक, श्री कानजी स्वामी की सेवा में

अभिनन्दन-पत्र

आत्मार्थिन!

आत्मधर्म के परम आराधक और प्रसारक होते हुए भी आपने सम्यग्दर्शन की विशुद्धि के साधन-भूत सिद्धक्षेत्रों की वंदनार्थ एक विशाल संघ के साथ यात्रा प्रारम्भ की और परम तीर्थाधिराज सम्मेदशिखर, पावापुर, राजगृह, चम्पापुर आदि अनेकों तीर्थस्थानों की वंदना करते हुए इस दिल्ली में पदार्पण किया है, जिसे स्वतंत्र भारत की राजधानी होने का गौरव प्राप्त है। अपनी खोज-शोध के लिये प्रख्यात, प्रसिद्ध पुरातत्वविद्, साहित्य तपस्वी, ब्रह्मचारी आदरणीय जुगलकिशोरजी मुख्तार, 'युगवीर' द्वारा संस्थापित इस वीर सेवा मंदिर में ठहरकर आपने हम लोगों पर जो अनुग्रह किया है, वह हम सबके लिये परम हर्ष की बात है।

आजन्म ब्रह्मचारिन्!

भगवान नेमिनाथ के पादपद्म से पवित्र हुए और वीरवाणी के सुमुद्धारक श्री धरसेनाचार्य की तपोभूमि होने के कारण अपने 'सुराष्ट्र' नाम को सार्थक करनेवाले सौराष्ट्र देश में आपने जन्म लिया। गृहस्थाश्रम में सर्वसाधन सम्पन्न होते हुए भी आपने बाल्यकाल से ही ब्रह्मचर्य को अंगीकार किया, और अत्यंत अल्पवय में संसार से उदास होकर साधु दीक्षा ग्रहण की। पूरे २१ वर्ष तक स्थानकवासी जैन सम्प्रदाय में रहकर श्वेताम्बर आगम-सूत्रों—ग्रंथों का विशिष्ट अभ्यास किया, और अपने सम्प्रदाय के एक प्रभावक वक्ता एवं तपस्वी बने। उस समय अनेकों राजे-महाराजे और सहस्त्रों जैन आपके परम भक्त थे, तथा आपको 'प्रभु' कहकर वंदना-पूर्वक साष्टांग नमस्कार करते थे।

अध्यात्म-रसिक!

श्वेताम्बर जैन आगम-सूत्रों के पूर्ण अवगाहन करने पर भी आपकी आध्यात्म रस पिपासा

शांत न हो सकी। सौभाग्य से दो सहस्र वर्ष पूर्व आचार्य कुंदकुंद-निर्मित परम अमृतमय समयसार आपके हस्तगत हुआ, आपने अत्यंत सूक्ष्म दृष्टि से उसका स्वाध्याय प्रारम्भ किया। स्वाध्याय करते ही आपको यथार्थ दृष्टि प्राप्त हुई, और विवेक जागृत हुआ। आपने अनुभव किया कि आज तक मैंने शांति-प्राप्ति के लिये तुष-खंडन में ही अपने जीवन का बहुभाग बिताया है। उस समय आपके हृदय में अंतर्द्वन्द मच गया। एक ओर आपके सामने अपने सहस्त्रों भक्तों द्वारा उपलब्ध पूजा-प्रतिष्ठा आदि का मोह था, और दूसरी ओर सत्य का आकर्षण। इन दोनों में से अपनी पूजा-प्रतिष्ठा के व्यामोह को ठुकराकर आपने दिगम्बर धर्म को स्वीकार किया, और महान् साहस और दृढ़ता के साथ विक्रम संवत् १९९१ में 'चैत्र शुक्ला त्रयोदशी को वीर-जयन्ती के दिन' वीरतापूर्वक अपने वेश-परित्याग की घोषणा की। घोषणा सुनते ही सम्प्रदाय में खलबली मच गई और नाना प्रकार के भय दिखाये गये, परन्तु आप अपने निश्चय पर सुमेरु के समान अटल और अचल रहे। तब से आप अपने आपको आत्मार्थी कहकर आचार्य कुंदकुंद के अतिगहन आध्यात्मिक ग्रंथों की गूढ़तम ग्रंथियों के सूक्ष्मतम रहस्य का उद्घाटन कर कुंदावदात, अमृतचंद्रप्रस्यूत, पीयूष का स्वयं पान करते हुए अन्य सहस्त्रों अध्यात्म-रस-पिपासुओं को भी उसका पान करा रहे हैं और अत्यंत सरल शब्दों में अध्यात्म तत्त्व का प्रतिपादन कर रहे हैं।

आत्म-धर्म-पथिक!

जिस सौराष्ट्र में दिगम्बर जैनधर्म का अभाव-सा हो रहा था, वहाँ आपके प्रवचनों को श्रवण कर सहस्त्रों तत्त्व-जिज्ञासुओं ने दिगम्बर जैन धर्म को धारण किया, सैकड़ों नर-नारियों और सम्पन्न घरानों के कुमार-कुमारिकाओं ने आजीवन ब्रह्मचर्यव्रत अंगीकार किया। तथा जिस सौराष्ट्र में दिगम्बर जैन मन्दिर विरल ही थे, वहाँ आपकी प्रेरणा से २० दिगम्बर जैन मन्दिरों का निर्माण हो चुका है, और इसप्रकार आपने धर्म की साधना और आत्मा की आराधना के साधन वर्तमान और भावी पीढ़ी के लिए प्रस्तुत किये थे।

अध्यात्मप्रसारक!

कुछ शताब्दियों से जैन सम्प्रदाय के आचार-व्यवहार में जब विकार प्रविष्ट होने लगा और त्रिवर्णाचार एवं चर्चासागर जैसे ग्रंथ प्रचार में आने लगे, तब १८वीं शताब्दी के महान विद्वान पण्डित टोडरमलजी ने उस दूषित व्यवहार से जानता के बचाव के लिये मोक्षमार्गप्रकाशक की रचनाकर जैनधर्म के शुद्धरूप की रक्षा की। उनके पश्चात् इस बीसवीं शताब्दी में व्यवहार-मूढ़ता

जनित धर्म के विकृत स्वरूप को बतलाकर 'आत्म-धर्म' के द्वारा उससे बचने के मार्ग का आप निर्देश कर रहे हैं। आपके तत्त्वावधान में आज तक तीन लाख पुस्तकों का प्रकाशन हुआ है, जिससे लोगों को अपनी 'मूल में भूल' ज्ञात हुई है।

अध्यात्म-संघनायक!

आपने सोनगढ़ में रहकर और श्रमण-संस्कृति के प्रधान कार्य ध्यान-अध्ययन को प्रधानता देकर उसे वास्तविक अर्थ में श्रमण-गढ़ बना दिया है। आप परम शांति के उपासक हैं और निंदा-स्तुति में समवस्थ रहते हैं। आपके हृदय की शांति और ब्रह्मचर्य का तेज आपके मुख पर विद्यमान है। आप समय के नियमित परिपालक हैं। भगवद्भक्ति-पूजा करने की विधि, आध्यात्मिक-प्रतिपादन-शैली और समय की नियमितता ये तीन आपकी खास विशेषताएँ हैं। अध्यात्म का प्रतिपादन करते हुए भी हम आपकी प्रवृत्तियों में व्यवहार और निश्चय का अपूर्व सम्मिश्रण देखते हैं। आपके इन सर्व गुणों का प्रभाव आपके पार्श्ववर्ती मुमुक्षुओं पर भी है। यही कारण है कि उनमें भी शांतिप्रियता और समय की नियमितता दृष्टिगोचर हो रही है। आपकी इन्हीं सब विशेषताओं से आकृष्ट होकर अभिनंदन करते हुए हम लोग आनन्द-विभोर हो रहे हैं।

ता० ७-४-५७,
२१, दरियागंज, दिल्ली

हम हैं आपके,
वीर सेवा मन्दिर-सदस्य
भा० दि० जैन परिषद-सदस्य

भावना से भवन

जिसे जिसकी रुचि हो, वह बारम्बार उसकी भावना भाता है और भावनानुसार भवन-फल होता है।

भावना से भवन होता है; जैसी भावना वैसा भवन अर्थात् बारम्बार शुद्ध आत्मस्वभाव की भावना भाने से वैसा भवन (परिणमन) हो जाता है, इसलिये जब तक आत्मा की यथार्थ श्रद्धा, ज्ञान और अनुभव न हो, तब तक सत्समागम से बारम्बार प्रीतिपूर्वक उसका श्रवण-मनन और भावना करते ही रहना चाहिये। उस भावना से ही भव का नाश होता है।

परमोपकारी पूज्य गुरुदेव का
अमर सन्देश

(श्रीमती ललिता शाह, बी. ए. ऑनर्स, जामनगर)

अध्यात्मयोगी परम उपकारी पूजनीय गुरुदेवश्री कानजी स्वामी का जीवन परिचय नहीं बल्कि उनके तेजोमय और प्रभावशाली अनोखे व्यक्तित्व के एक पहलू का आलेखन करना भी 'छोटे मुँह बड़ी बात' सी लग रही है, तो भी उनकी जन्म-जयन्ती के पुनीत पर्व पर यत्-किंचित् लिखने का साहस कर रही हूँ।

हम इतिहास के पन्ने उलटते हैं, तो मालूम होता है कि किसी-किसी समय में युगपुरुष पैदा होते हैं। संसार में अज्ञान के कारण जमी हुई विषैली जड़ों को निकालकर अपूर्व शांति स्थापित करने का मंगल कार्य यह युगपुरुष करते हैं।

आजकल जो युग प्रवाह चल रहा है। उसका अभ्यास करने पर प्रतीत होता है कि आज संसार में दो प्रमुख प्रवाह चल रहे हैं।

एक प्रवाह है, जिसमें जन-समाज मूर्त इन्द्रियों से अनुभूत भौतिक जगत और भौतिक स्वार्थ को ही परम सत्य मानता है। बुद्धि का विकास उनके लिये परम लक्ष्य है। बुद्धि से परे अतिसूक्ष्म आत्मा की अनुभूति और श्रद्धा उनको नहीं है। ऐसी श्रद्धावाला जनसमाज नास्तिक के नाम से पहिचाना जाता है।

दूसरा प्रवाह है जिसमें जनसमाज आत्मतत्त्व की गहरी समझ के बिना शास्त्रकथित क्रियाकांड करता है। ऐसी क्रिया के हार्द में जो भावना भरी पड़ी होती है, उस भावना को वह समझता नहीं। जीवन व्यवहार में अंधश्रद्धा ही दिखाई देती है। ऐसे लोगों को आस्तिक नाम से पहिचाना जाता है।

किंतु चिंतन से प्रतीत होता है कि उपरोक्त दोनों प्रवाहों का अस्तित्व अज्ञानजनित है। आत्मा की गहरी समझ और अनुभूति के बिना जो कुछ चिंतन-मनन होता है, वह बुद्धि है, ज्ञान नहीं, प्रज्ञा नहीं।

उपरोक्त वर्णित अज्ञान-तिमिर युग में ज्ञानरूप सूर्य का प्रकाशित होना अत्यंत आवश्यक

था। इस आवश्यकता की पूर्ति परम कृपालु पूज्य गुरुदेव ने सद्ज्ञान का अमर संदेश देकर ही है।

'हमें देह में व्याप्त किंतु देह से भिन्न या देह से अलिप्त, वाचा से, मन से, कर्म से, बुद्धि से परे अति सूक्ष्म जो आत्मतत्त्व है, उसकी जान-पहचान करके उनका साक्षात्कार (Self realisation) करना चाहिये। आत्मा अजर, अमर, शुद्ध, बुद्ध, सत्‌चिदानन्द ज्ञानसागर है, किंतु हमें प्रतीत नहीं होती, क्योंकि व्यक्तरूप से राग, द्वेष, मोह, ममतादि अनेक शुभ और अशुभ वृत्तियों का ही स्पष्ट अनुभव होता है। एवं इसी क्षणिक अनुभूति को मानव अपना सच्चा स्वरूप समझने की भूल करता है। सुख-दु:ख की कल्पना को पलटकर चिदानंद भगवान आत्मा को पाने का प्रयास करें तो अपनी दृष्टि बदल जाती है। और दृष्टि बदलने पर भूला हुआ अपना सच्चा स्वरूप पा सकते हैं। महानुभाव श्रीमद् राजचन्द्र ने अपनी आत्मसिद्धि में कहा है कि

उपजे मोह विकल्प से, समरत ये संसार।
अंतर्मुख अवलोकतां, विलयथतां नहीं बार॥

इसीलिये इस घट में विराजमान चिदानंद भगवान आत्मा को व्यक्तरूप से अनुभूति में लाने के लिये जीवनपर्यंत पुरुषार्थ करना चाहिये। क्योंकि पामर मानव इस संसार में बार-बार अनुकूल या प्रतिकूल स्थिति या संयोग में आ पड़ता है। ऐसी परिस्थिति में वह संयोग के आधीन हो जाये। क्योंकि निमित्त की ओर झुकाव करने से राग-द्वेष मोहादिभावों की उत्पत्ति, क्षोभ और आकुलता का वेदन होता है। इस वेदन के कारण चित्त क्षोभ की इस परिपाटी से संसार बढ़ता है। इसलिये ही द्रव्यदृष्टि का बल से, भेदविज्ञान परिणत होकर शांत, स्थिर, निराकुलता तटस्थता भाव का वेदन हो सके, ऐसा सतत पुरुषार्थ करना चाहिये। सच्ची श्रद्धा से ऐसा पुरुषार्थ करे तो आत्मा क्षुद्रात्मा से उठकर महात्मा बन जाता है जो परमात्मदशा प्राप्त करने का मंगल द्वार है।'

पूज्य गुरुदेव के इस संदेश को जीवन में आदर्श बनाकर जीवन व्यतीत करने की मेरी उत्कट भावना चरितार्थ हो, यही प्रार्थना करती हूँ।

इस महान विभूति की ७४वीं वर्षगाँठ पर हमारी मौन प्रार्थना है कि पूज्य गुरुदेव दीर्घायु बनें, हम भक्तों को उनके उपदेशामृत पान करने का अहोभाग्य सदा मिलता रहे। श्री गुरुदेव के चरणकमलों में अत्यंत भक्ति पूर्वक नमस्कार हो। ●●

जब मुझे सही दिशा मिली

पूज्य श्री क्षु० चिदानंदजी महाराज

जब मैं लगभग ८-९ वर्ष पूर्व पैदल यात्रा द्वारा दिल्ली से जैनबद्री मूलबद्री आदि दक्षिण की यात्रा को गया था, तब गिरनारजी की यात्रा करने के पश्चात् चिर अभिलषित अभिलाषा को पूर्ण करने के लिये सोनगढ़ गया और ठीक चातुर्मास के समय पहुँचा व १४ माह वहाँ रहा।

इस पैदल यात्रा में मुझे यह अनुभव तो पहले ही हो चुका था कि जो सोनगढ़ के सन्त के सम्पर्क में रह चुके थे, वह कितने विनयी, सात्विक और अटल श्रद्धावाले होते हैं। जब वहाँ मैंने स्वामीजी की धर्मदेशना श्रवण की और वहाँ का अपूर्व शांत वातावरण देखा तो जो आनन्द आया, उसको मैं प्रगट करने में असमर्थ हूँ। और यही कारण है कि वहाँ की प्राकृतिक छटा को जो एक दफे अवलोकन कर लेता है, वह दूसरे वक्त जाये बिना नहीं रह सकता।

मैंने इसके पूर्व अपने जीवन के क्षण जिनवाणी के रहस्य को समझे बिना बिताये, धर्म क्या वस्तु है ? इसका कोई पता नहीं था और जो ऊपरी बातों की मान्यता थी, उसी में सन्तुष्ट रहता था। जब स्वामीजी से निश्चयव्यवहार, निमित्त उपादान, कर्ताकर्म, निमित्त-नैमित्तिक संबंध के विषय में सुना व १४ माह की अवधि में जो अनुभव किया तो उक्त विषयों की गलत धारणा निकल गई और जीवन की दिशा बदल गई, तब वास्तविकता की ओर उत्सुकता होने लगी।

वहाँ रहनेवाले मुमुक्षुजन निश्चयात्मक धर्म पर तो अटूट श्रद्धा रखते ही हैं, क्योंकि वास्तव में धर्म तो वही है परन्तु साथ ही मन्दकषाय, धर्मोपदेश सुनने की संलग्नता, जिनेन्द्र पूजन भक्ति के विषय में बहुमान्यता, उपकारी के प्रति विनय आदि भी वहाँ के रहनेवालों में देखी जाती है और यह सब स्वामीजी के निश्चयव्यवहार की संधिपूर्वक उपदेश करने की शैली का प्रतीक है क्योंकि निश्चय के साथ जो व्यवहार होता है, उसका निषेध कैसे हो सकता है ?

सोनगढ़ में सतत् बहनेवाली आध्यात्मिक सरिता में गोते लगाने से अमूलचूल परिवर्तन हुये बिना नहीं रह सकता और यही कारण है कि सोनगढ़ के शांत-वातावरण के अनुभव के बाद ही मैं यथार्थता की ओर जा सका और मेरी जीवन की दिशा बदली।

(सन्मति संदेश से साभार उद्धृत)

पूज्य श्री कानजी स्वामी के प्रति—

अभियान

[श्री 'युगल' कोटा (राजस्थान) एम.ए. साहित्यरत्न]

लो रोको तूफान चला रे।
पाखंडों के महल ढहाता, लो रोको तूफान चला रे।

सह न सका जो मिथ्यामत की सीमा के जीवन में बन्धन,
रह न सका अवरुद्ध वहाँ जो बढ़ने लगा हृदय स्पन्दन।
एक दिवस अन्तर-रवि जागा, पुण्य जागरण बेला आई,
जिसकी ज्ञान चेतना ने रे! चिर निद्रा से ली अंगड़ाई।
जिसकी करवट से संशय का चिर-सिंहासन डोल चला रे,
पाखंडों के महल ढहाता, लो रोको तूफान चला रे॥

'निखिल-विश्व पथ पाये' हिय में करुणा का संसार समेटे,
अपनी एक श्वांस में रे जो संशय तम का मरण लपेटे।
जिसकी प्रज्ञा के प्रताप से कर्तृवाद को थी हैरानी,
अरे मृतक को मिली चेतना सुन जिसकी कल्याणी वाणी।
रे! अणु-अणु की आजादी का शंखनाद वह फूंक चला रे,
पाखंडों के महल ढहाता लो रोको तूफान चला रे॥

बोली दुनियां अरे! अरे!! रे!!! मात-पिता का धर्म न छोड़ो,
जिसमें तुमने जन्म लिया है उस पथ से अब मुँह मत मोड़ो।
हरी-भरी सी कीर्ति लता है, दिग्दिगंत में व्याप्त तुम्हारी,
यह लो यह लो, सिंहासन लो लेकिन रक्खो लाज हमारी।
अरे तुम्हारे इस निश्चय से भूतल पर भूचाल मचा रे;
पाखंडों के महल ढहाता लो रोको तूफान चला रे॥

उत्तर मिला 'धर्म शिशु जननी के अंचल में नहीं पलता है,
और पिता की परंपरा से बंधकर धर्म नहीं चलता है।

अरे लोक की सीमाओं को छोड़ धर्म का स्यंदन चलता,
ज्ञान चेतना के अंचल में प्यारा धर्म निरंतर पलता।
सिंहासन क्या धर्म, देह की समता तक तो छोड़ चला रे।'
पाखंडों के महल ढहाता, लो रोको तूफान चला रे॥

प्राणों का भीषण संकट भी उसका पथ नहीं मोड़ सका रे,
कोटि कोटि आंसू का वर्षण उसका व्रत नहीं तोड़ सका रे।
रे! उत्तुंग हिमाचल-सा बे रोक बढ़ा वह अपने पथ पर,
जिसने उसके पथ को रोका, झुका उसी का मस्तक भूपर।
पर्वत ने भी उसे राह दी, खंड खंड हो वज्र गिरा रे,
पाखंडो के महल ढहाता लो रोको तूफान चला रे॥

जिसको राह मिली, उसको अब चाह रही क्या शेष बताओ,
जिसको थाह मिली, उसको परवाह रही क्या शेष बताओ?
उसने युग की धारा पलटी, वह अध्यात्म क्रांति का सृष्टा,
एक दिव्य संदेश 'विश्व का चेतन केवल ज्ञाता दृष्टा'।
अरे! मुक्ति के सुंदर पथ का करता वह जय घोष चला रे,
पाखंडों के महल ढहाता, लो रोको तूफान चला रे॥

अरे वीर के जन्म दिवस पर भूतल का अभिशाप मिट गया,
अरे वीर के जन्म दिवस से एक नया इतिहास जुड़ गया।
अंधकार में युग सोता था, घुटती थीं जीवन की श्वांसें,
पानी में भी पड़े हुये थे, अरे मीन युग युग के प्यासे।
तेरा पावन पुनर्जन्म यह वसुधा का वरदान बना रे,
पाखंडों के महल ढ़हाता, लो रोको तूफान चला रे॥

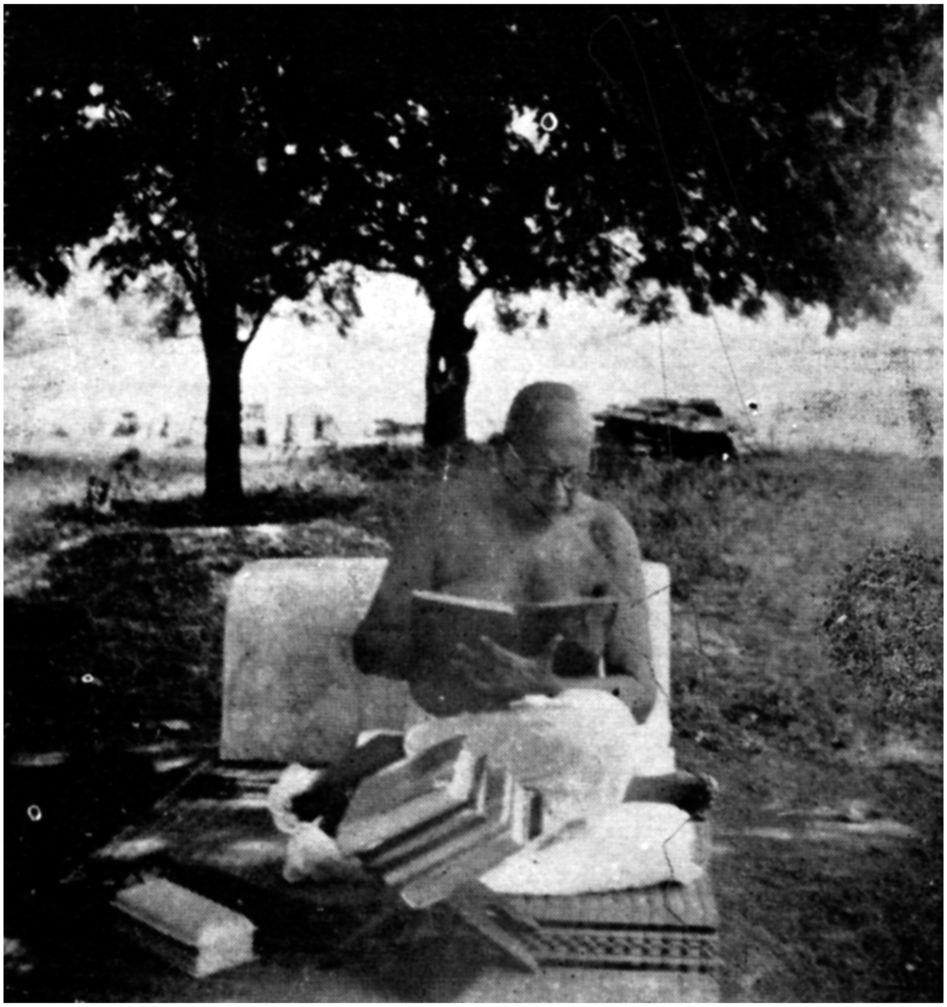

शान्त सुधारस-अमृत सिंचक पू. कानजी स्वामी वृक्ष के नीचे स्वाध्याय करते हैं

आप संत की शीतल छाया में आपकी अध्यात्मरस झरती मधुर वाणी हृदय से सुनने से संसार के आताप शांत होते हैं, जैसे वृक्ष का आश्रय करनेवाले पुरुष को छाया स्वयं प्राप्त हो जाती है। स्वात्मानुभूति दर्शक आपकी वाणी पामर को प्रभुता की दृष्टि देकर उनकी प्रभुता की पहचान कराते हैं। विस्मृत चैतन्य परमपद याद कराकर मोक्षमार्ग का अंकुर प्रगटाते हैं। धर्म जिज्ञासुओं के लिये कल्पवृक्ष समान महामनोज्ञ वदतांवर... आपके उपकार का प्रति उपकार करने में असमर्थ ऐसे हम मुमुक्षुगण आपको परम भक्ति से वंदन करते हैं।

आत्मधर्म के ग्राहकों से नम्र निवेदन

मोक्षमहल की परथम सीढ़ी, या विन ज्ञान चरित्रा;
सम्यक्ता न लहे, सो दर्शन धारो भव्य पवित्रा।
'दौल' समझ सुन चेत सयाने, काल वृथा मत खोवै;
यह नर भव फिर मिलन कठिन है जो सम्यक् नहिं होवे।
पुण्य-पाप फल मांहि, हरख विलखौ मत भाई,
यह पुद्गल पर्जाय, उपजि विनसै फिर थाई।
लाख बात की बात यहै निश्चय उर लाओ,
तोरि सकल जग-दंद फंद, नित आतम ध्याओ।

जीव अपनी भूल से ही दुःख के उपाय को सुख का उपाय मानकर सच्चे सुख के उपाय को अंगीकार तो नहीं करता किन्तु निःसंदेह होकर उसका निर्धार भी नहीं करता, इस अनादि की भूल का नाश सम्यग्दर्शन बिना कभी नहीं होता।

परमोपकारी पूज्य कानजी स्वामी द्वारा अत्यंत स्पष्ट रूप में सर्वज्ञ भगवान कथित सम्यक् अनेकांतमय जैनधर्म का प्रकाश चल रहा है, उसमें सर्व शास्त्रों का तात्पर्य वीतरागता, यथार्थता, स्वतंत्रता क्या है, वह दर्शाकर अपूर्व, उत्तम, मंगल और शरणरूप आत्मधर्म का मूल सम्यग्दर्शन है जिसकी धर्म जिज्ञासुओं को यथार्थ महिमा आ सके और समझ में आ जाय कि अहो! यह बात वस्तु स्वभावमय यथार्थ है। आत्मधर्म में १८ साल से जिनेन्द्र भगवान कथित सत्य का ही प्रचार हो रहा है।

अब से आत्मधर्म के ग्राहकों को नियमित अंक मिलते ही रहेंगे। जिसको आत्मधर्म के अंक नहीं मिलते थे, उसमें पता स्पष्ट नहीं होने का और हमारे कर्मचारी का दोष था उससे उसे दूर किया है, अब ऐसा नहीं होगा। ग्राहकगण क्षमा करें और ऐसे पवित्र तत्त्वज्ञान का अधिक संख्या में प्रचार हो, इसलिये आत्मधर्म के प्रेमीजनों से प्रार्थना है कि ग्राहकों की संख्या में वृद्धि करें।

आत्मधर्म हरेक मास की १० वीं तारीख को रवाना होता है। बाद छह दिन तक न मिले तो ग्राहक नंबर और स्पष्ट पता लिखकर पत्र डालें।

पता - **जगजीवन बाउचंद दोशी**
संपादक श्री आत्मधर्म
पो० सावरकुंडला (सौराष्ट्र)

आत्महित की कथा

निर्मल भेदज्ञान

[जो सिद्धपद को प्राप्त हुए, वे भेदविज्ञान से ही प्राप्त हुए हैं।]

निर्जरा अधिकार, गाथा २२८ पर पूज्य स्वामीजी का प्रवचन

ता० १५-४-६२, चैत्र सुदी १०

आत्मा और मिथ्यात्वादि आस्रवों के भेद का ज्ञान होने पर अखण्ड ज्ञानस्वभाव में अभेद बुद्धि होती है तथा मिथ्यात्व, रागादि मलिनभावरूप आस्रवभाव का क्रमशः अभाव होता ही है। शुभाशुभ आस्रवभाव मलिन हैं, उनसे विरोधी ऐसा संवरभाव शुद्ध है। उसका फल निर्जरा और मोक्ष है। संवर-निर्जरा एकसाथ ही होते हैं। भेदज्ञान की दशा में अंशतः विभाव से मुक्तिरूप दशा चौथे गुणस्थान से प्रारम्भ होती है।

आत्मा नित्य देह-मन-वाणी से भिन्न ज्ञानस्वभावी है, क्षणिक विकार और देहादि का संयोग आत्मा से भिन्न है, आत्मा उनसे अत्यंत अभावरूप है—त्रिकाल भिन्न है। राग-द्वेष-मोहरूप वर्तमान क्षणिक दशा, वह मलिनभाव है, आस्रवतत्त्व है, वह आत्मा (जीवतत्त्व) नहीं है।

आत्मा को उसके ध्रुव स्वस्वरूप की दृष्टि से देखना, वह सच्ची दृष्टि है। आत्मा अनंत पर पदार्थों की क्रिया से भिन्न, अनंत अन्यत्वस्वरूप है। पुण्य, पाप और मिथ्यात्वरूप अनंत विभाव क्रिया से पृथक् पराश्रयरहित त्रिकाल अविकार ज्ञानमय आत्मा का अनुभव करना कि 'यह मैं हूँ,' ऐसी निर्विकल्प श्रद्धा से उसका आश्रय करना, उसका नाम भेदज्ञान है। संवर अधिकार में,

'भेद विज्ञानतः सिद्धाः सिद्धाः ये किल केचन।
यस्य एव अभाव तो बद्धाः बद्धाः ये किल केचन॥'

अर्थात्—अनादिकाल से अब तक जो कोई सिद्ध पद को प्राप्त हुए हैं, वे सब भेदज्ञान से प्राप्त हुए हैं और संसार दुःख में जिन्होंने भ्रमण किया है, भ्रमण करते रहे हैं और भ्रमण करेंगे, वे सब भेदज्ञान के अभाव से ही—ऐसा समझना। अनंतानंत पदार्थों के कार्यों से मैं भिन्न हूँ, उनका कर्ता-प्रेरक मैं नहीं हूँ। शुभाशुभभाव आस्रवतत्त्व है, मलिनतारूप दोष है; वह आत्मा नहीं है।

क्योंकि उस क्षणिक दोष जितना और जैसा आत्मा नहीं है। तथा वे भाव आत्मा के नहीं हैं। स्वभाव में संयोग और विकार का अत्यंत अभाव है—ऐसा अनुभवसहित भेदज्ञान कभी नहीं किया। अर्थात् उसके अभाव के कारण एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तक—निगोद से नव ग्रैवेयिक तक के अनंत भव इस संसारी जीव ने अनंत बार किये हैं। स्वयं को भूल जाना और पर को अपना मानना, ऐसा मिथ्यात्व भाव ही सबसे बड़ा अपराध है और इसी के कारण जीव दु:खों को भोगता है।

जो अविनाशी परमानंदमय सिद्धपद को प्राप्त हुए हैं, वे सब भेदज्ञान से ही प्राप्त हुए हैं। किसी भी प्रकार का राग, वह अपराध है। दया, दान, व्रत, तप, पूजा, भक्ति का शुभभाव हो अथवा हिंसा, झूठ, चोरी आदि का अशुभ (पाप) भाव हो, वे दोनों आस्रव हैं, अनात्मा हैं; 'मैं उनसे भिन्न हूँ, असंग, अविकार ज्ञानमय हूँ'—ऐसा भान करके अन्तर्मुख होना—वह संवर-निर्जरा है। इसके बिना व्रत आदि के शुभभाव में व्यवहारधर्म का आरोप भी नहीं होता। बाह्य में शुभभाव तथा देह की क्रिया से अथवा उसके आश्रय से धर्म होता है, ऐसा जो मानते हैं, उन्हें अभव्य की भाँति अनादि का मिथ्या अभिप्राय ही है।

प्रथम पाप को छोड़कर, पुण्य-पाप करने से धीरे-धीरे निश्चय धर्म की प्राप्ति होगी—ऐसा माननेवाला भी राग को—अनात्मा को आत्मा मानता है। पुण्य में धर्म नहीं है; इसलिये पाप हो तो कोई हानि नहीं है; ऐसी बात नहीं है। विपरीत मान्यता का पाप किस प्रकार है, वह बतला रहे हैं। अपने ही भाव हित-अहितरूप हैं। उनको न जानने के कारण जीव तो सर्वत्र भय और दु:ख का अनुभव करता है। ज्ञानी को भय नहीं होता, क्योंकि वे नित्य समस्त प्रकार के पुण्य, पाप व उनके फल के प्रति अभिलाषा रहित होने से कर्म के प्रति (शुभाशुभ आस्रव के प्रति) अत्यंत निरपेक्ष वर्तते हैं। नित्य ज्ञातास्वभाव की अपेक्षा और समस्त विभाव व्यवहार की उपेक्षारूप आत्मस्वभाव में दृढ़ता है, इससे वास्तव में वे अत्यंत नि:शंक, दृढ़ निश्चयी होने से अत्यन्त निर्भय होते हैं।

ज्ञानी को इसलोक-परलोक का भय क्यों नहीं होता? उसका उत्तर यह है कि यह चैतन्यस्वरूप लोक ही पर से भिन्नरूप से परिणमित होनेवाले आत्मा का लोक है। जितना स्वज्ञेय है, उतना ही लोक है। जो शाश्वत और सर्वदा प्रगट है। संग और विकाररहित मात्र चित् स्वरूप ज्ञानानन्द से परिपूर्ण ज्ञायकस्वभाव ही मेरा चित्स्वरूप लोक है। उसी में एकत्व का अनुभवन करता हुआ ज्ञानी विचारता है कि—यह अविनाशी, समस्त परद्रव्यरूप लोक से भिन्न ज्ञानस्वरूप लोक, जो कि सदा अंतरंग में प्रगट है, वही मेरा लोक है, उससे भिन्न दूसरा कोई लोक या परलोक

मेरा नहीं है। निश्चयपूर्वक जानता है, इससे ज्ञानी को इसलोक या परलोक का भय कैसे होगा? भूमिकानुसार शुभाशुभराग आता है, उसके कारण मेरे भेदज्ञान का नाश हो जायेगा, ऐसा भय भी ज्ञानी को नहीं होता; वह तो स्वयं ज्ञानस्वभाव की अधिकता से निरन्तर नि:शंक-निर्भय रहता हुआ सहजज्ञान का ही नित्य अनुभवन करता है। वर्तमान दशा में ज्ञान है, उसके द्वारा स्वसन्मुख होकर स्वज्ञेय के रूप में अपने आत्मा को जानता है कि यह मेरा 'स्वलोक' है, वही मेरा अविचल, ध्रुव ज्ञानधाम है, शाश्वत् शरणभूत है। उसके आश्रय से सर्व समाधान और नि:शंकता-निर्भयता होती है।

इसके बिना त्यागी-साधु अनन्त बार हुआ, तथापि राग के अभावरूप अंशमात्र नि:शंक-निर्भय नहीं हुआ।

''मुनिव्रत धार अनन्त बार, ग्रीवक उपजायो,
पै निज आतमज्ञान बिना, सुख लेश न पायो॥''

व्रतादि तथा दया, दान, पूजा, भक्ति के विकल्प, जो आस्रवतत्त्व है, उसे हितकर मानकर मंद कषाय करके नव ग्रैवेयक तक गया, किन्तु आत्मा का यथार्थ भान न करने से किंचित्मात्र भी सुख प्राप्त नहीं हुआ।

अनादिकाल से स्वयं शुभाशुभभाव (पुण्य-पाप) करता आया है। उनके फलस्वरूप यह जीव कहाँ था, उसकी वर्तमान में खबर नहीं है तो क्या वहाँ नहीं था? अनंत पुद्गलपरावर्तन में ८४ लाख योनि (उत्पत्ति स्थान) में अकेला दु:ख भोगता था। पुण्य-पाप के वेदन में स्वयं खो गया था। भेदज्ञान के बिना प्राण धारणरूप दीनता से अनंतकाल से भ्रमण कर रहा है। पाप में हार मानते हैं और थोड़ी सी पुण्य की सामग्री प्राप्त हुई, शुभभाव हुए तो मैं जीत गया—ऐसा अज्ञानी ने मान लिया है। मिथ्यात्वरूपी योद्धा ने बड़े-बड़े नामधारी पण्डित, त्यागी सबको हराया है। इस मिथ्यात्व को सम्यग्दर्शनरूपी संवर जीतता है, उसमें विशेष बुद्धिरूप निर्जरा उत्पन्न होती है। निर्जरा के तीन प्रकार हैं—

(१) अंशत: शुद्धि की वृद्धिरूप भाव,

(२) अंशत: अशुद्धि का नाश और;

(३) जड़कर्मों का अंशत: क्षय होना।

मात्र शुभभाव से पाप की निर्जरा नहीं होती। सबसे बड़ा पाप तो अतत्त्वश्रद्धारूप मिथ्या

अभिप्राय है। त्रैकालिक निर्विकार ज्ञानस्वभाव से अपने को एकरूप माने और रागादि से भिन्न जानकर, ज्ञानस्वभाव में एकत्वरूप से परिणमन करे, वह ज्ञानी है। कर्म की प्रबलता से आत्मा में परिणमन न कर सके, ऐसा कभी नहीं होता किन्तु अज्ञान के कारण यह जीव ही विपरीत मान्यता करता है। राग, द्वेष, पुण्य, पाप मेरे हैं और मैं इनका कर्ता हूँ – ऐसी आस्रव की भावनारूप अपराध जीव स्वयं ही करता है। एकेन्द्रिय निगोददशा में भी जीव अपने दोष से ही भ्रमण करता है। श्री गोम्मटसार शास्त्र में लिखा है कि 'भाव कलंक सुप्रचुरा निगोद वासं न मुंचति' वहाँ पर अपने मलिन भावों की उग्रता से निगोद के स्थान को जीव नहीं छोड़ता – ऐसा कहा है। कोई ऐसा मानता है कि असंज्ञी पंचेन्द्रिय तक के जीवों को जड़ कर्म का जोर है, वहाँ स्वतंत्रता नहीं हे, पुरुषार्थ नहीं है तो यह बात त्रिकाल असत्य है।

निगोदवास में भी प्रत्येक जीव चैतन्यमूर्ति भगवान के समान ही है किन्तु वर्तमान में भूल होने से भेदज्ञान के अभाव से ही भ्रमण करता है। देह, मन, वाणी, शुभाशुभ विकल्प, यह सब चैतन्यस्वभाव से भिन्न हैं, उससे विजातीय हैं—ऐसा न मानकर उनमें एकत्वबुद्धि करना, पराश्रय से लाभ मानना, वह संसार में परिभ्रमण का कारण है। किसी दूसरे ने परिभ्रमण कराया हो, ऐसा नहीं है।

अंतरंग में प्रगट चैतन्यज्ञानघनवस्तु त्रिकाल परद्रव्य-परभाव से भिन्न है—ऐसी प्रतीतिपूर्वक अंतरोन्मुख होने पर अवश्य सम्यग्दर्शन-भेदज्ञान होता है। शुक्लध्यान और मोक्षपद भेदज्ञान से प्राप्त होता है। सर्वत्र हित का उपाय एक ही प्रकार का है। हित का कारण स्वयं ही है और अहित का अर्थात् भ्रमण का कारण भी स्वयं ही है। जड़कर्म या कुगुरु के कारण भ्रमण किया—ऐसा नहीं है।

भेदज्ञानी को लोक या परलोक का भय नहीं होता; किन्तु नित्य निर्भय ज्ञातास्वभाव के आश्रय से सावधान रहने के कारण उसे प्रतिक्षण शुद्धि की वृद्धिरूप निर्जरा होती है। स्व-पर के भेदज्ञान के कारण चैतन्यस्वरूप से और रागादि परभाव पररूप से—विरुद्धपने ज्ञात होते हैं।

भेदज्ञान के बिना जन्म-जरा-मरण का अन्त नहीं आयेगा। जैसा सर्वज्ञ के आगम में कहा है, उसीप्रकार गुरुगम से प्रमाण करके युक्ति तथा स्वानुभव द्वारा निःसंदेह भावभासन होना, वह भेदविज्ञान है, इसके बिना विकल्प तथा शब्दों को धारणा में रखकर ऐसा माने कि हमको सच्चा ज्ञान है, तो वह मात्र भ्रम है।

अहो! पराश्रयरहित चैतन्यस्वभावी आत्मा वर्तमान में भी शरीर तथा राग से भिन्न है, वर्तमान दशा में शुभ-अशुभभाव (पुण्य-पाप) होने पर भी उनसे पृथक् है। पूर्ण स्वभाव की निर्मल श्रद्धा-ज्ञान द्वारा अपने में एकमेक होकर वर्तता है।

पुण्य-पाप, व्रत-अव्रत के भाव सब आस्रवतत्त्व हैं, चैतन्य उनसे भिन्न है। वर्तमान भूमिका के (दशा के) अनुसार अनेक प्रकार के विकल्प आते हैं, उन विकल्परूप होनेवाला मैं नहीं हूँ, किंतु उनको जाननेवाला हूँ। स्वाश्रय से परिणमन करनेवाला ज्ञान सर्व रागादि से भिन्न तथा स्वभाव में अभेदता—एकता का पोषण करनेवाला है।

यह चैतन्य (ज्ञाताद्रव्य) स्वरूप लोक बाह्य में कहीं भी व्यापक नहीं है, किन्तु अंतरंग में हमेशा प्रगट है, तथा अपने अनंत ज्ञानादि गुणों में व्यापक है, और वह सर्वज्ञता की शक्ति सहित है, जिसके प्रगट होते ही उसके ज्ञान में तीन काल-तीन लोकवर्ती समस्त द्रव्य-गुण-पर्याय एक साथ अत्यंत स्पष्ट ज्ञात होते हैं, ऐसा आत्मा वर्तमान में भी अपने सकल व्यक्त स्वभाव सहित है। इसका निर्णय करने में क्रमबद्धपर्याय का ज्ञान तथा ज्ञातापना का सच्चा पुरुषार्थ आता ही है। सर्वज्ञ भगवान के ज्ञान में वस्तुरूप से तथा पर्याय के रूप से सब व्यक्त है। सर्वज्ञ भगवान ने जैसा देखा, उसप्रकार विश्व (छह द्रव्य स्वरूप है, वह) क्रमानुसार प्रत्येक द्रव्य की पर्याय में व्यक्त होता है। भेदज्ञानी को सकल प्रत्यक्ष ऐसे केवलज्ञान की प्रतीति होती है। जिस द्रव्य की जिस काल में जो अवस्था होनेवाली है, वह सर्वज्ञ के ज्ञान में ज्ञात होती है तथा उसके क्रम में वह नियत होती है। इसप्रकार जिसको अपने सर्वज्ञस्वभाव के आलम्बन से निर्णय हो जाता है, उसी को पर से विभक्त और स्व से एकत्व आत्मा की स्पष्ट प्रतीति तथा भेदज्ञान होता है।

जीव अपनेरूप से है और पररूप से नहीं है; अपने ही परिणामों से परिणमित होनेवाला है, अन्य के परिणामों से या अन्य के परिणामोंरूप नहीं हो सकता; इसलिये जीव पर के भावों का अकर्ता ही है, यह बात भी तभी समझ में आती है कि जब पुण्य-पाप के विकल्पों से पार, समस्त रागादि का अकर्ता त्रिकाली ज्ञायक हूँ, उसमें उन्मुखता या स्वभाव में ही एकताबुद्धि हो। सर्वज्ञ की सत्ता का अन्तर में निश्चय हो, तभी संयोग और विकार का कर्तृत्व ममत्व छूटकर क्रमबद्धपर्याय का निर्णय होता है। मेरा शाश्वत चैतन्यस्वभाव ही निर्मल पर्याय का आधार है, ऐसा जानता हुआ ज्ञानी रागादि का और पर का कर्ता नहीं होता किन्तु ज्ञाता ही रहता है।

पर में कर्ताबुद्धिवाला मानता है कि पर के कार्य अनासक्ति से करना; किंतु एक ओर मैं पर

का कुछ कर सकता हूँ और दूसरी ओर अनासक्ति मानना भ्रम है, निश्चय से या व्यवहार से किसी भी प्रकार जीव पर का कुछ कर ही नहीं सकता और उसका कुछ रोक भी नहीं सकता। पर की व्यवस्था रखूँ; पर में फेरफार करूँ, ऐसा बोलूँ, ऐसा न बोलूँ—ऐसे अभिप्राय में ही पर के कर्तृत्व का अभिमान है; सर्वज्ञस्वभाव का निश्चय करने से ही उस अभिमान का नाश होता है। सर्वज्ञ का स्वरूप और त्रिकालवर्ती पदार्थों का स्वरूप जाने तो प्रत्येक द्रव्य की स्वतंत्र क्रमबद्धपर्याय है तथा मैं तो ज्ञाता हूँ—ऐसी प्रतीति हो। कोई किसी का कर्ता नहीं है, सभी द्रव्य निरंतर अपने परिणामों में उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यपने से सत् स्वरूप होने के कारण अपने परिणामों में ही तन्मय होनेवाले होने से अपने ही परिणामों के कर्ता हूँ;—ऐसा निर्धार-निर्णय करने से पर में और राग में अकर्तापना और नित्यज्ञाता स्वभाव में एकत्व का अनुभवपूर्वक सम्यक् भेदज्ञान होता है।

अकेला चैतन्यस्वभाव अपने से स्थिर रहकर परिणमन करनेवाला है, रागादि आस्रवतत्त्व हैं, वे जीव से बिल्कुल विरुद्धभाव हैं, भेदज्ञानी जीव उनका कर्ता, भोक्ता और स्वामी कैसे हो सकता है ?—नहीं हो सकता। निचली भूमिका में ज्ञानी को भी शुभाशुभभाव आते हैं, किंतु मैं उनका अनुसरण करनेवाला नहीं हूँ, ऐसा मानता है; परावलम्बी भाव को हितकर-नहीं मानता।

प्रथम श्रद्धा में से समस्त रागादि और संयोग का आश्रय, कर्तृत्व-ममत्व (-स्वामित्व) सर्वथा छूटता ही है; पश्चात् स्वसन्मुखता के बल के अनुसार रागादि दूर होते हैं, स्व-पर प्रकाशक ज्ञान, वर्तमान चारित्र के दोष को हेयरूप जानता है, किसी शुभराग को भला या हितरूप नहीं मानता।

शुभरागरूप व्यवहार करते-करते, व्यवहार का आश्रय करने से क्रमशः कल्याण होगा—ऐसा ज्ञानी नहीं मानते। मोक्षमार्ग तो वीतरागभाव है, उसे शुभरागरूप व्यवहार सहायक है—ऐसा माननेवाला मिथ्यादृष्टि है। आत्मा और आस्रव को एक माननेवाला, अहित को हित माननेवाला है; इसलिये उसे भेदज्ञान नहीं है और भेदविज्ञानरहित जैनधर्म के नाम पर साधु हो जाये, शास्त्र पढ़े तो उससे क्या ? कुछ भी आत्मकल्याण नहीं होगा।

प्रवचनसार शास्त्र में अंतिम पाँच गाथाओं को रत्न समान कहा है; उनमें द्रव्यलिंगी साधु को संसारतत्त्व कहा है। मैं अपनी अमुक पर्याय को बदल दूँ या पर की पर्याय को बदल दूँ—ऐसे संयोग को प्राप्त करूँ, जुटाऊँ, पर का रक्षण करूँ, पर को नष्ट कर दूँ; शुभराग धर्म में सहायक है; शरीर की क्रिया व्यवहारनय से मैं कर सकता हूँ—ऐसा माननेवाला भले द्रव्यलिंगी जैनमुनि हो किन्तु वह अनंत भव में भ्रमण करनेवाला संसारतत्त्व है।

कोई आक्षेप करते हैं कि—सोनगढ़वाले दिगम्बर जैन मुनियों को नहीं मानते; अरे!!! जैन मुनियों के हम दासानुदास हैं, मुनि तो परमेश्वर पद के धारक हैं; मुनि तो मिथ्यात्व और तीन कषाय के समूह से रहित निश्चयरत्नत्रय युक्त होते हैं और एक दिन में हजारों बार छट्ठे–सातवें गुणस्थान में झूलनेवाले होते हैं; अतीन्द्रिय आनन्द में मौज करते हैं—ऐसे मुनि को–गुरु को हम कोटिवार वंदन–नमस्कार करके मानते हैं। प्रवचनसारजी शास्त्र में ऐसे मुनि को–साधु को मोक्षतत्त्व कहा है—'साधु हुआ तो सिद्ध हुआ' अहो!! चार ज्ञान के धारक श्री गणधरदेव भी नमस्कार मंत्र का स्मरण करते हुए कहते हैं कि—'णमो लोए सव्व साहूणं' अहो! ढाई द्वीप में विराजमान समस्त साधु परमेष्ठी, आपके चरणों में मेरा नमस्कार हो! तीनों काल में मुनि बाह्य–अभ्यंतर में निर्ग्रंथ नग्न होते हैं; ढाई द्वीप में जितने भी निर्ग्रंथ मुनि हैं, वे सभी बारम्बार छट्ठे–सातवें गुणस्थान में वर्तते हैं, सभी मोक्षतत्त्व हैं, मोक्ष के कारणतत्त्व हैं, भले ही दो घड़ी पूर्व साधु पद आत्मा में प्रगट किया हो, उन सभी को मेरा नमस्कार है। जो जीव मिथ्या अभिप्रायरूपी शल्यवाले हैं, राग की क्रिया से धर्म मानते हैं, वे ज्ञाता स्वभाव का तिरस्कार करनेवाले होने से मोक्षमार्ग का विरोध करते हैं। वीतरागमार्ग का विरोध के फल में एकेन्द्रिय, पशु होकर निगोद में जाते हैं—अरे! निगोद के जीव को दूसरे संयोगदृष्टि से देखनेवाले तो जीव नहीं मानेंगे, किंतु मैं जीव हूँ—ऐसा वह स्वयं भी नहीं मानेगा।

पुण्य–पापरूप भाव और मिथ्यात्व तो आस्रवतत्त्व है; उसे अहितकर न मानकर भ्रम से हितकर मानता है, वह संसारतत्त्व है। पंच महाव्रत पालन करके नवग्रैवेयक तक जानेवाले शुभोपयोगी द्रव्यलिंगी साधु और सामान्य मिथ्यादृष्टि सभी मिथ्यात्व अपेक्षा से समान ही हैं; क्योंकि उनमें आत्महित का अपूर्व अंतर नहीं है। पुण्य–पाप में हानि–वृद्धि वह संसार के खाते में है। दया, दान, व्रतादि के शुभभाव ज्ञानी के भी होते हैं, किंतु वह संसार पक्ष में हैं। मोक्षमार्ग में बंधमार्ग नहीं है। पर से तथा राग से निरपेक्ष मोक्षमार्ग है, धर्मी जीव शुद्ध चैतन्यस्वरूप स्वलोक–स्वज्ञेय का अवलोकन करनेवाले होते हैं। अखंड–ज्ञान–शांतिमात्र लोक, वह मेरा लोक है; जिस भाव द्वारा तीर्थंकर नामकर्म का बंध होता है, वह मेरा लोक नहीं है—वह शुभराग मेरा कार्य नहीं है; व्यवहार तो गुणस्थान के अनुसार होता है; पूजा, भक्ति, दया, दान, प्रभावनादि के शुभभाव उनके अपने काल में आते हैं, किंतु धर्मी जीव उन्हें स्वज्ञेय–स्वलोकरूप मानता है। नित्य असीम चैतन्यस्वरूप के आलंबन की शक्ति के कारण ज्ञानी नि:शंक–निर्भय हैं; इसलिये परलोक में मेरा क्या होगा ? मैं सम्यक्त्व से गिर जाऊँगा तो ?—ऐसी शंका धर्मी जीव को नहीं होती। निरंतर नित्य

निज कारणपरमात्मस्वरूप में दृष्टि होने से स्वरूपसन्मुख निःशंक अखंड धारावाही रुचि होती ही है। अखंड स्वरूप की रुचि के अनुसार आत्मा में अपना आंशिक निर्मल परिणमन चलता ही है; इसलिये ज्ञानी ज्ञानस्वभाव की दृढ़ता द्वारा निर्मल भेदज्ञान की दृष्टि द्वारा, मैं नित्य टंकोत्कीर्ण चित्स्वरूप ही हूँ—ऐसा सम्यक् अवलोकन करता है और व्यवहार के अनेक भेद, समल-विमल दशा के भेद उस-उस काल में जाने हुए प्रयोजनवान हैं—ऐसा ज्ञानी मानते हैं। संध्या के क्षणिक रंग क्षणभंगुर होते हैं, इसप्रकार संयोगी पदार्थ और संयोगी भाव (पुण्य-पाप के भाव) भी क्षणभंगुर ही हैं; वे आते हैं और जाते हैं; ज्ञानी तो उन सबके ज्ञातादृष्टा साक्षी हैं। भूमिका के अनुसार व्यवहार निमित्तरूप से आता अवश्य है, किंतु उसे आत्महित में आश्रय करनेयोग्य नहीं मानते, हेयरूप जानते हैं।

शरीरादि संयोग जल की तरंगों और बुदबुदों के समान शीघ्र नाशवान हैं। शरीर निरोग रहे; न रहे, उसके साथ मेरा क्या संबंध है? भगवान आत्मा वर्तमान में भी देह से भिन्न नित्य ज्ञातास्वरूप है; संकल्प-विकल्प अपने समय पर आते हैं, मैं वैसा और उतना नहीं हूँ; परद्रव्य के कारण मेरा हित-अहित नहीं हो सकता; मेरी भूल के कारण संसार और सच्ची प्रतीति में सच्ची शांति है। जीव और अजीव दोनों सदा भिन्न-भिन्न हैं; कोई किसी का न स्वामी है, न शत्रु-मित्र है; न कर्ता-भोक्ता हो सकता है, किंतु मोह द्वारा विपरीत श्रद्धा करे तो दुःखी होता है। धर्म करने से सुख होगा, ऐसा मानकर भ्रमवश शुभराग को धर्म मान लेता है, किंतु वह तीन काल में आत्महित करनेवाला धर्म नहीं है; धर्म तो आत्मा का मोह-क्षोभरहित निर्विकार स्वभाव है—ऐसा प्रथम निर्णय करना चाहिये। ऐसे निर्णय द्वारा अपने भूतार्थस्वभाव में दृष्टि करने से सच्चा समाधान और धर्म का प्रारम्भ होता है। मैं कौन हूँ, मैं क्या कर सकता हूँ; क्या नहीं कर सकता; स्वभाव-विभाव, हित-अहित क्या है? उसका कारण और फल क्या है? उसका भावभासनरूप निर्धार किये बिना साधु, मुनि, धर्मी नाम धारण करने मात्र से कोई धर्मी नहीं हो सकता। चिरायते के थैले पर शक्कर नाम लिखने से उसमें मिठास नहीं आ जाती।

कल्याण का उपाय तो कल्याणकारी आत्मा में ही है। कोई सम्मेदशिखरजी जाये और कई बार तीर्थयात्रा करे; व्रत-उपवासादि करे तो वह धर्मात्मा नहीं है; कारण कि धर्म तो संवर-निर्जरारूप वीतरागभाव है, उसका संबंध राग की क्रिया के साथ नहीं है; धर्म का संबंध नित्य चैतन्यस्वभाव के साथ है, पुण्य के संयोग और शुभभाव बहुत हैं; इसलिये वह धर्मी है—ऐसा नहीं

है; धर्मी को व्यवहाररत्नत्रय आदि के शुभभाव आते हैं, वह आस्रव हैं, बंध का कारण है, ऐसा ज्ञानी जानता है; किंतु उस शुभव्यवहार को करते-करते सच्चा धर्म होगा—ऐसा कोई ज्ञानी नहीं मानता; क्योंकि ऐसा अनेकांत सिद्धांत है कि जिस भाव से बंधन हो, उस भाव से मोक्ष या मोक्ष का उपाय नहीं हो सकता। किसी काल में, किसी को किसी अपवाद के कारण शुभराग द्वारा धर्म हो जाये—ऐसा मोक्षमार्ग नहीं है। जितने अंश में रागादि की उत्पत्ति होती है, वह औदयिकभाव है, बंध का ही कारण है। ज्ञानी ऐसा कभी नहीं मानता कि अमुक राग तो करनेयोग्य है; यदि राग को करनेयोग्य मानेगा तो वह धर्मी नहीं होगा। धर्मी जीव तो नि:शंकतया सर्व विरुद्ध भावों का निषेध करके सदा अपने को चित्स्वरूप अवलोकन करता है। निरंतर मिथ्यात्व, रागादि से भिन्न, शरीर से भिन्न सिद्ध परमात्मा समान ऐसे अपने ज्ञायकस्वरूप को अपना मानता-जानता है और स्वानुभवसहित वर्तता है, इसलिये ज्ञानी को अशुद्धि का व्यय और शुद्धि की वृद्धिरूप निर्जरा होती है। संयोग से दु:ख नहीं है; शरीर में रोगादि हो-वह प्रतिकूलता-दु:ख नहीं है, किंतु दु:ख तो आत्मा के अस्तित्व में सुखगुण की अशुद्धदशा है; उसे उत्पन्न करनेवाला जीव स्वयं है। पर से इष्ट-अनिष्ट मानकर पर से और रागादि से भिन्न स्वसत्ता को भूलकर मिथ्यादृष्टि मुनि हुआ, महान पुण्यवंत कहलाया, किंतु उसका आत्मा अज्ञानवश दु:खी ही है। राग से, पुण्य से, शरीर की क्रिया से कल्याण मानता है, उसे भेदज्ञान न होने से शुद्ध ज्ञानरहित अंध बुद्धि कहा है। आचार्यदेव ने ताडपत्रों के ऊपर शास्त्र लिखे थे, ऐसा कथन निमित्त का ज्ञान कराने के लिये आता है, किंतु वास्तव में अक्षर लिखने की क्रिया के कर्ता आचार्य नहीं थे। हाँ, यह शास्त्र लिखूँ, ऐसी इच्छा हुई थी, किंतु ज्ञानी इच्छा के कर्ता नहीं हैं, व्यवहार से ज्ञाता हैं।

आत्मा को रागादि का अथवा शरीर की क्रिया का कर्ता मानकर, नग्न होकर मुनिवेश धारण करता है, उसे सम्यक्त्व नहीं है; सम्यग्दर्शन के बिना चारित्र नहीं होता; अंतर में ध्रुव ज्ञायकस्वभाव में दृष्टि, ज्ञान और एकाग्रता द्वारा मिथ्यात्व और रागादि रूपी वस्त्र का त्याग होता है, तब निर्ग्रंथ मुनिपद धारक सच्चा साधु समझना चाहिये; ऐसे साधुपद में सहज ही अट्ठाईस मूलगुणों का पालन, नग्न दिगम्बर आदि निमित्त होते हैं।

कोई कहे कि—वर्तमान काल में निश्चय धर्म नहीं होता, शुद्धोपयोग नहीं होता, इसलिये पुण्य की क्रिया करो, व्रतादि करो—शुभराग से स्वर्ग मिलेगा, फिर परम्परा से निश्चय धर्म होगा; किंतु किसी काल में पुण्य से आत्मा की प्राप्ति नहीं होती। अज्ञानी को संयोग और राग की रुचि है,

इसलिये उसे राग और उसके फल में प्रीति है, पुण्य करने से अनुकूलता मिलेगी, ऐसा मानता है। जिसे जितना अनुकूलता से प्रेम है, उसे उतना ही उसी समय प्रतिकूलता के प्रति तीव्र द्वेष है ही।

ज्ञानी तो स्पष्टतया मानता है कि पर से सुख-दु:ख नहीं है, मेरा चैतन्यस्वभाव किसी के द्वारा बने या बिगड़े, ऐसा नहीं हो सकता।

प्रश्न—ज्ञानी नि:शंक-निर्भय है तो सिंह, सर्प, अग्नि आदि से भयभीत होकर भागते हैं कि नहीं?

उत्तर—शरीर का भागना-न भागना जीव के वश नहीं है; ज्ञानी को चारित्र में अशक्ति हो तो इच्छा होती है; अल्प भय होता है और भागने का विकल्प एवं क्रिया भी बन जाती है; और अज्ञानी न भागे ऐसा भी हो सकता है। यदि ज्ञानी मुनिदशा में हो तो भयभीत न होकर, आत्मा में एकाग्रता बढ़ाकर आनन्दस्वरूप में एकाग्र हो जाता है' और निचली दशा में कोई ज्ञानी अशक्तिवश भयभीत होकर भागे तो भी अंतर में नित्य ज्ञायक हूँ, मेरा आत्मा ही उत्तम, मंगल और शरणरूप है, ऐसी श्रद्धा-ज्ञान द्वारा तो स्थिर है, निर्भय है, इसलिये पूर्व अज्ञानदशा में भय के कारण जो बंध होता था, वह कभी नहीं होता, किंतु निरंतर स्वालंबन के अनुसार निर्जरा (आंशिक शुद्धि की वृद्धि) होती है।

तो वह भी मिथ्यादृष्टि ही है

जगत के स्थूल बुद्धिवान जीव जिसप्रकार ईश्वर को जगतकर्ता मानते हैं, उसीप्रकार यदि कोई जैन सम्प्रदाय में रहकर ऐसा मानें कि आत्मा पर का कुछ करता है अथवा कर्म, जीव को परिभ्रमण कराते हैं—तो वह भी अन्यमती की भाँति मिथ्यादृष्टि ही है, वस्तु के स्वतंत्र स्वभाव की उसे प्रतीति नहीं है।

जिज्ञासु शिष्य की पात्रता

जो जीव अज्ञानी है, जिसने कभी आत्मा के परमार्थ स्वरूप का अनुभव नहीं किया है; परन्तु अब जिसे शुद्ध आत्मस्वरूप समझने की लालसा जागृत हुई है—ऐसे पात्र शिष्य को श्रीगुरु आत्मा का परमार्थ स्वरूप समझाते हैं। उस शिष्य से 'आत्मा' शब्द कहने पर, 'आत्मा' शब्द का जो अर्थ है, उस अर्थ के ज्ञानरहित होने से कुछ भी समझ में न आने से वह मेढ़े की तरह आँखें फाड़कर टुकुर-टुकुर देखता ही रह जाता है... देखो, यह आचार्यदेव जिज्ञासु शिष्य की पात्रता बतलाते हैं। शिष्य अभी आत्मा को नहीं समझा है, किंतु समझने का कामी है; इसलिये समझानेवाले ज्ञानी की ओर मेढ़े की भाँति टुकुर-टुकुर देखता ही रह जाता है, यहाँ मेढ़े का दृष्टान्त शिष्य की जिज्ञासा बतलाने के लिये दिया है। मेढ़े का दृष्टान्त दोष बतलाने के लिये नहीं किंतु गुण बतलाने के लिये है। जिसप्रकार मेढ़े में अनुसरण करने की आदत है, उसीप्रकार शिष्य भी सामने समझानेवाले ज्ञानी के भाव का अनुसरण करना चाहता है। स्वयं नहीं समझता, इसलिये अरुचि नहीं लाता, किन्तु समझने की जिज्ञासा से देखता ही रहता है।

'आँखें फाड़कर टुकुर-टुकुर देखता ही रह जाता है'—ऐसा कहने में आचार्यदेव ने अनेक भाव भर दिये हैं। प्रथम तो समझने की जिज्ञासा है, इसलिये चित्त को कहीं उल्टा-सीधा नहीं घुमाता, परन्तु समझने के लिये चित्त को एकाग्र करता है। अपनी समझ में नहीं आता, उसमें कथन करनेवाले का दोष नहीं निकालता, परन्तु समझने के लिये स्वयं ज्ञान की विशेष एकाग्रता करता है और स्वयं कुछ नहीं समझता, तथापि टुकुर-टुकुर देखता ही रहता है—उसमें उसे इतना तो विश्वास है कि जिसमें मेरा हित हो, ऐसा कुछ यह कहना चाहते हैं; इसलिये ज्ञानी कहते हैं, वह बात मुझे समझने जैसी है; इससे समझने के लिये अपने समस्त ज्ञान को आत्मा की ओर एकाग्र करता है। 'आँखें फाड़कर टुकुर-टुकुर देखता ही रह जाता है'—ऐसा कहा, उसमें बाह्य आँखें तो व्यवहार से हैं; वास्तव में देखने का कार्य तो अंतर के ज्ञानचक्षु करते हैं; अर्थात् ज्ञान का जो क्षयोपशम विकसित हुआ है, उसे अब पराङ्मुख नहीं करता परन्तु उसे आत्मा की ओर एकाग्र करता है और निमित्तरूप से कहा जाये तो आत्मा का स्वरूप सुनानेवाले ज्ञानी की ओर टुकुर-टुकुर देखता ही रह जाता है—अर्थात् उससे विरुद्ध कथन करनेवाले कुगुरुओं की बात नहीं सुनना चाहता; और बाह्य के विषय-कषायादि में भी चित्त को नहीं घुमाता; बस, मात्र आत्मा को ही

समझना चाहता है। 'काम एक आत्मार्थ का, अन्य नहीं मन रोग'—इतनी पात्रता तो श्रोता में हो गई है—ऐसा स्वीकार करके श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने समयसार में शुद्ध आत्मा का स्वरूप समझाया है। ऐसा शिष्य अपने ज्ञान को शुद्धात्मा की ओर एकाग्र करके स्वरूप के सहज आनंद का अनुभव करता ही है।

आचार्यदेव ने आत्मा में सिद्धत्व की स्थापना की है कि 'मैं सिद्ध हूँ और तू भी सिद्ध है!' आत्मा के सिद्धत्व की वह बात सुनते ही जिसे अंतर से उल्लास एवं उत्साह आया, वैसे ही जीव की आत्मा को समझने की चेष्टा देखकर श्री आचार्यभगवान ने निश्चित किया कि इस जीव को आत्मा समझने की तीव्र आकांक्षा और पात्रता है; इसलिये उसे आत्मा समझाते हैं। और वह जीव भी, ज्ञान के क्षयोपशमरूपी जो आँख खुली है, उसे बंद नहीं करता, परंतु उस समस्त ज्ञान को आत्मा की ओर एकाग्र करता है।—ऐसे योग्य आत्मा में धर्म का बीजारोपण होता है, और उस जीव में देशनालब्धि का परिणमन होकर यह आत्मानंद का अनुभव करता है।

आत्मा का यथार्थ स्वरूप समझे बिना ही मैं अभी तक दु:खों में भटका; आत्मस्वरूप समझने में ही मेरा हित है—ऐसा जिसे अंतर में भास हो, उसका ज्ञान आत्मोन्मुख हुए बिना नहीं रहता। जिज्ञासु जीव को श्रवण में लापरवाही या निरुत्साहभाव नहीं होता; परंतु समझने की चिंता और उत्साहभाव होता है। अहो! यह ज्ञानी मुझे मेरे हित की बात सुनाते हैं, मेरे अपूर्व कल्याण की बात कहते हैं—इसप्रकार अंतर में अपूर्व उल्लासभाव लाकर पात्र जीव आत्मस्वरूप को समझ जाता है।

पहले समझ में न आये, तो उससे हताश होकर भागता नहीं है किंतु समझने के लिये धैर्यपूर्वक खड़ा रहता है और आँखें फाड़कर टुकुर-टुकुर देखता ही रहता है।—ऐसे शिष्य को आचार्यदेव समझाते हैं कि 'हे भाई! अंतर में जो सदैव दर्शन-ज्ञान-चारित्र को प्राप्त है, वह आत्मा है।' देखो! राग, वह आत्मा नहीं है; देह की क्रिया करे, वह आत्मा नहीं है, परंतु सदैव दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप आत्मा है। 'आत्मा' शब्द का ऐसा अर्थ समझाते हैं, तब तुरंत ही उत्पन्न होनेवाले अत्यंत आनन्द से उस शिष्य के हृदय में सुंदर ज्ञान-तरंगें उछलने लगती हैं।

इस गाथा में आचार्यदेव ने सम्यग्दर्शन की पाँचों लब्धियों का समावेश किया है—(१) 'आँखें फाड़कर' टुकुर-टुकुर देखता ही रह जाता है—इसमें क्षयोपशमलब्धि आ जाती है; समझने जितना ज्ञान का विकास हुआ है। (२) संसार के विषय-कषाय की ओर के भाव छोड़कर,

आत्मस्वरूप समझने के लिये टुकुर-टुकुर देख रहा है और स्व की ओर के विचारों में वृद्धि करता है—उसमें कषाय की अत्यंत मंदता है, इसलिये विशुद्धिलब्धि आ जाती है। (३) 'आत्मा' क्या है, उसका स्वरूप उल्लासपूर्वक ज्ञानी पुरुष के पास से सुना, वह देशनालब्धि है। (४) समझने के लिये टुकुर-टुकुर देखता ही रह जाता है अर्थात् ज्ञान को अंतर में एकाग्र करता जाता है, वहाँ प्रायोग्यलब्धि हो जाती है। (५) सम्यग्दर्शन होने के समय अंतरपरिणाम में स्वोन्मुख होता हुआ विशुद्धभाव होता है, उससमय करणलब्धि हो जाती है। और पश्चात् तुरंत ही शुद्ध आत्मा का निर्विकल्प अनुभव करता है, वहाँ ज्ञान-आनंद की अपूर्व तरंगें उछलती हैं; अनादिकाल से कभी जिसका अनुभव नहीं किया था, ऐसे अपूर्व आनन्द का अनुभव होता है। पूर्वकाल में अनंतबार जीव चार लब्धि तक आकर लौट गया है—ऐसी बात यहाँ नहीं है; यहाँ तो ऐसी अपूर्व बात है कि जिसे देशनादि लब्धियाँ प्राप्त हों, वह आगे बढ़कर निर्विकल्प अनुभव करता ही है। 'आत्मा' ऐसे शब्द के सन्मुख देखकर शिष्य नहीं अटकता, परंतु उसके वाच्यभूत वस्तु को ग्रहण करके उसका अनुभव करता है। 'जो ज्ञान-दर्शन-चारित्र को निरंतर प्राप्त हो, वह आत्मा है'—ऐसा भेद करके समझाया, परंतु शिष्य उस भेद का लक्ष करके नहीं अटकता; किंतु उस भेदरूप व्यवहार का लक्ष छोड़कर अभेदस्वरूप आत्मा को लक्ष में लेकर उसका अनुभव करता है। बीच में भेदरूप व्यवहार आता अवश्य है, परंतु उसके अवलम्बन में अटके तो आत्मा का परमार्थ स्वरूप समझ में नहीं आता; इसलिये वह व्यवहारनय आश्रय करनेयोग्य नहीं है; भेदरूप व्यवहार का आश्रय छोड़कर अभेदस्वभाव के आश्रय से अनुभव करने पर शुद्ध आत्मा का अनुभव होता है।

श्रीगुरु के कथन में भेद आया, परंतु उनका आशय तो अभेद आत्मा समझाने का था, और शिष्य ने भी भेद का लक्ष छोड़कर अभेद आत्मा को पकड़ लिया; इसलिये गुरु-शिष्य दोनों के अभिप्राय समान हुए। अहो! स्वरूप समझकर अनंत जन्म-मरण को दूर करने का यह अवसर है। अनंत जन्म-मरण दूर करने के लिये आत्मा की सच्ची समझ के अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नहीं है। जिसे अनंत जन्म-मरण का भय लगता हो, उसे स्वरूप को समझने में अरुचि नहीं होती किंतु अपूर्व उत्साह होता है; भगवान आत्मा की कहानी ज्ञानी के पास बारम्बार सुनता है और अंतर से उछल-उछलकर उसी का माहात्म्य गाता रहता है।

'भाई! तेरा आत्मा सदैव परिपूर्ण दर्शन-ज्ञान-चारित्रस्वरूप ही है'—इसप्रकार ज्ञानी द्वारा अपने आत्मा की अचिंत्य महिमा सुनकर उल्लास से उछल पड़ता है कि अहो! मेरी अनंत ज्ञान-

आनंद की ऋद्धि मेरे ही पास है; मेरे स्वभाव की पूर्णता में से एक अंश भी कम नहीं हुआ है।—इसप्रकार अंतर में स्वभाव का बोध होने से ही हृदय अत्यंत आनंद से विकसित हो जाता है। आचार्य भगवान, तुरंत मोक्ष हो–ऐसी अपूर्व बात कहते हैं; उसे सुनते ही सुपात्र जीवों को तुरंत ही सम्यग्दर्शन हो जाता है। अपूर्व भाव से देशनालब्धि झेलने के पश्चात् तुरंत निर्विकल्प अनुभव होता है—ऐसी शैली यहाँ ली है; देशनालब्धि झेलने के पश्चात् अनुभव के बीच अंतर नहीं रखा। जो जीव तैयार होकर, अंतरंग–लालसापूर्वक समझने के लिये आया, वह जीव न समझे, ऐसा नहीं हो सकता; और जो समझे, उसे अपने आत्मा में अत्यंत आनंदमय मनोहर ज्ञान–तरंगें उछलती हैं; उसे स्वयं उसका अनुभव होता है।

श्रद्धा का विषय पूर्ण ज्ञायकमूर्ति आत्मा है; उसे लक्ष में लेना, वह परमार्थ है; और दर्शन–ज्ञान–चारित्र के भेद करके आत्मा को लक्ष में लेना, वह व्यवहार है। शरीर मेरा है और उसकी क्रिया मैं कर सकता हूँ—ऐसी मान्यता तो व्यवहार भी नहीं है, वह तो मात्र अज्ञान है। यहाँ तो कहते हैं कि गुण–गुणी के भेदरूप व्यवहार का लक्ष भी छोड़ने जैसा है; भेदरहित परमार्थस्वरूप आत्मा ही सम्यग्दर्शन का विषय है। देखो भाई! यह विषय जीवों ने अनादिकाल से यथार्थतया न तो सुना है और न समझा है। यदि यह समझ लें तो अंतरदशा पलट जाये और अल्पकाल में मुक्ति हो जाये!

[श्री समयसार गाथा ८ के प्रवचन से]

शुद्धता कैसे होती है?

आत्मा को शुद्धता कैसे होती है?—शुद्धात्मा में प्रवृत्ति करे तब।

शुद्धात्मा में प्रवृत्ति कब होती है?—शुद्धात्मा को जाने तब।

किसी बाह्य क्रिया से या राग में प्रवृत्ति से आत्मा को शुद्धता नहीं होती; परंतु शुद्धात्मा में प्रवृत्ति से ही आत्मा को शुद्धता होती है। (—प्रवचन से)

अरे आत्मा! तेरी अगाध गति होते हुए भी
भेदज्ञान के द्वारा
सुखधाम में निवास कर

(मोक्षमार्गप्रकाशक, अध्याय ७ के ऊपर पूज्य श्री कानजी स्वामी का प्रवचन, वीर संवत् २४८८, श्रावन सुदी १५, १५-८-६२)

यहाँ यह प्रकरण चल रहा है कि मोक्षमार्ग किसे कहते हैं। धर्म-अधर्म, हित-अहित क्या है, यह अनादि काल से अज्ञानी जीवों ने जाना नहीं है। सर्वज्ञ वीतराग भगवान ने तीन काल, तीन लोक को एक समय में जाना। उनकी दिव्य वाणी में ऐसा आया कि हे आत्मा! तेरा स्वरूप चिदानंद है, वह तुझमें ही है, बाहर से नहीं आता। सत-नित्य, चित्-ज्ञान और आनन्द, ये तुम्हारा वास्तविक स्वरूप है, उसे जाने बिना बाहर में पुण्य में तथा धनादि में तेरी रुचि हो रही है, लेकिन दया, दान के भाव तो राग हैं, उससे तो बंध ही होता है; धर्म नहीं होता। सत्य समझे बिना जीव अनादि काल से दुःखी हो रहा है। नोकर्म अर्थात् शरीर; द्रव्यकर्म अर्थात् ज्ञानावरणादि जड़कर्म और शुभाशुभ रागरूप भावकर्म तुझसे भिन्न हैं। तूने भूल से उनको अपना माना है, यही मिथ्यात्वरूपी पापभाव है। हिंसा, भोग, धन कमाने का भाव पाप है, उससे चैतन्य भिन्न है। धर्मी ज्ञानी जीवों के भी दया, दान, पूजा, भक्ति, यात्रा करने के भाव होते हैं, लेकिन वे पुण्य हैं, आस्रव हैं, विकार हैं; पवित्र धर्म नहीं हैं। अज्ञानी जीव देखादेखी मोक्ष को उत्कृष्ट कहता है कि अहो! मोक्ष में स्वर्ग के इन्द्रों के सुख से भी अनंत गुणा सुख हैं—तो ज्ञानी कहते हैं कि तुझे तत्त्व की खबर नहीं है क्योंकि स्वर्ग में जो विषयादि सामग्री जनित सुख होता है, वह सब आकुलतारूप ही है। पूर्व में पुण्य बंध किया, उसके उदय काल में मिली सामग्री में तूने सुख की कल्पना की, वह तो जहर है, दुःख है, वह तो महा विपरीतता है। जहाँ सुख नहीं, वहाँ तो अज्ञानी सुख मानता है और जहाँ सुख है, वहाँ मानता नहीं।

जिसप्रकार कच्चे चने में मिठास शक्तिरूप से भरी हुई है, व्यक्त नहीं है। यदि उस चने को बोया जावे तो उगता है किंतु उसे सेक लिया जावे तो मिठास प्रगट होती है और फिर बोने पर उगता नहीं है। प्राप्त की प्राप्ति होती है। इसीप्रकार आत्मा में सुख भरा हुआ है लेकिन अज्ञानी उसे नहीं जानता। स्वर्ग के देवों को जितना सुख है, उससे सिद्धों में अनंत गुणा सुख अज्ञानी कहते हैं। स्वर्ग में माना हुआ सुख आकुलतामय होने के कारण जहर ही है; उससे सर्वथा विरुद्ध अतीन्द्रिय

आत्मिक सुख है। संसार के राग से अंतर के आनन्द की जाति बिल्कुल भिन्न है। आत्मा आनन्द का पिंड है उसकी प्रतीति करके अंतरंग में झुकाव करे तो उसका स्वाद आता है। पुण्य-पाप में जो लाभ मानता है, वह मिथ्यादृष्टि है।

तोरी गाँव में अगाधगति नाम की पुस्तक लेकर वहाँ का पटेल आया और उसने कहा कि इसमें मुझे समझ में नहीं आता, उसमें लिखा था कि कोई भी प्राणी जप, तप, दया, दान, स्मरण, पूजा, सेवा करे तो उससे तनिक भी मोक्ष प्राप्त नहीं होता क्योंकि वे सब वृत्तियाँ राग की हैं, उसका फल यही प्राप्त होता है अर्थात् उसका फल संसार ही है।

अरे आत्मा! तेरी तो अगाधगति है, दया-दानादिरूप पुण्यभाव से मोक्षमार्गरूप धर्म माने-मनावे, वह तो आत्मधर्म का लुटेरा है। धर्मी जीव को निचली अवस्था में पुण्य-पाप के भाव आते अवश्य हैं, पर वह राग की क्रिया को धर्म नहीं मानता।

धन कमाने का भाव पाप है। धन आता है, वह वर्तमान चतुराई से नहीं किंतु पूर्व पुण्य के उदय से ही आता है। तू उसमें सुख की कल्पना करके पाप का बंध करता है।

अनंत काल बीत गया किंतु एक समयमात्र भी आत्महित जाना नहीं। जिससे ऐसा माना है कि शरीर की क्रिया मैं कर सकता हूँ किंतु मरते समय बोलने की इच्छा होते हुए भी बोल नहीं पाता क्योंकि वाणी इच्छा के आधीन नहीं है, वह तो मात्र भाषावर्गणा का ही स्वतंत्र परिणमन है। मैंने अपने परिवार का पालन-पोषण किया, मैंने व्यापार किया, सगे-संबंधियों की सहायता की, मैंने पाँच लाख रुपया कमाया, ऐसा माननेवाला मिथ्या अभिमानी है। कहा भी है कि.....

'कोशिश करो हजार भाग्य बिन मिले न कोड़ी' समय आने के पूर्व धन मिलता नहीं और भाग्य से अधिक मिलता नहीं। संयोग अपने समय में आता है और चला जाता है। जीव को वास्तव में धन प्राप्त नहीं हुआ किंतु ममतावान को ममता ही मिली। भेदज्ञानपूर्वक स्वसन्मुख ज्ञातापने की धीरज रखनेवाले को ही स्थायी समता मिलती है। ज्ञानी, पुण्य-पाप और उसके फल का कर्ता-भोक्ता अथवा स्वामी होता ही नहीं। पूर्व पुण्य के उदय से वर्तमान में जो अनुकूल सामग्री प्राप्त होती है, उसमें अज्ञानी जीव मोहवश ऐसा मानता है कि मेरे पुरुषार्थ से यह सब मिला है किंतु वह भ्रम ही है। अज्ञानी की दृष्टि संयोग पर ही है, इसीकारण वह मोक्ष सुख को भी विषयजनित सुख की भाँति ही मानता है और कहता है कि मोक्ष का सुख, स्वर्गादि के इन्द्रों के सुख से अनंत गुना है, उसको अनुपम मोक्ष सुख की खबर नहीं है।

श्रीमद् राजचंद्रजी का जन्म विक्रम संवत् १९२४ में हुआ था, १९३१वीं साल में सात वर्ष की आयु में पूर्व भव का जाति-स्मरणज्ञान प्रगट हुआ, १६ वर्ष की आयु में मोक्षमाला नाम की पुस्तक बनाई, उसमें १०८ पाठ लिखे, उसमें एक काव्य इसप्रकार है....

'बहु पुण्य केरा पुंज थीं, शुभ देह मानवनों मिल्यो।
तो अे अरे! भव चक्रनों, आंटो नहीं एके टल्यो।
सुख प्राप्त करतां सुख टले छे, लेश ये लक्षे लहो,
क्षण-क्षण भयंकर भाव मरणे, कां अहो! राची रहो।'

जो जीव पुण्य-पाप को करने योग्य मानते हैं। शुभराग से आत्मकल्याणरूप धर्म मानते हैं, वे निर्विकार ज्ञाता स्वभाव का पूर्ण रूप से तिरस्कार करते हैं और स्वयं ही अज्ञान के कारण स्वयं के शत्रु होते हैं।

'जे स्वरूप समझया बिना, पाम्यों दुःख अनंत,
समझाव्युं ते पद नमूँ, श्री सद्गुरु भगवंत।'

आत्मसिद्धि के दोहों में प्रथम ही पूर्णता के लक्ष्य से साधक भाव प्रगट किया है। अपना वास्तविक स्वरूप समझा, सुख का उपाय अंतरंग में ही है, ऐसा समझा तब जाना कि अहो! मेरा परम पद तो स्वाधीन है किंतु उसको भूलकर अनंत काल से परिभ्रमण किया है, एक क्षणमात्र भी धर्म किया नहीं।

जिसप्रकार पर्वत पर बिजली गिरने से खंड-खंड हो जाते हैं और फिर वे नहीं मिलते। उसीप्रकार भगवान आत्मा, पुण्य-पाप और समस्त प्रकार के राग से पार, परिपूर्ण ज्ञानस्वभावी हैं, ऐसी निर्विकल्प प्रतीति होने पर संसार में अनंत काल तक परिभ्रमण नहीं करना पड़ता।

'यम नियम संयम आप कियो,
पुनि त्याग विराग अथाग लियो,
जप भेद जपे तप त्योंहि तपे
उर से, ही उदासी लही सबमें
वह साधन बार अनंत कियो
तदपि कछु हाथ हजु न पर्यो
अब क्यों न विचारत है मन से
कछु और रहा उन साधन से'

अरे आत्मा! तू कौन है, तेरा क्या स्वरूप है, तेरे अधिकार में क्या है, क्या हो रहा है और तू क्या मान रहा है, तूने एक भी बात का सत्य निर्णय नहीं किया। अज्ञानी गुरुओं ने बाह्य में, तथा व्रतादि पुण्य बंध की क्रियाओं में धर्म मनवाया है। जगत को जन्म-मरण रहित नित्य ज्ञानघन आत्मा क्या है, इसकी खबर नहीं। इसकारण उसका सत्य चारित्र क्या है, इसकी खबर उसको कैसे हो। क्षणिक विभाव और त्रिकाली एकरूप चैतन्यस्वभाव में भेदविज्ञान करके अंतर्मुख होकर अतीन्द्रिय आनन्द अमृत में लीन होना, वह आत्मा का चारित्र है। बीच में निचली दशा में शुभराग आता है, वह आस्रवतत्त्व है। वह आत्मा का संवर-निर्जरारूप चारित्र नहीं है। यह बात नहीं समझने के कारण ही दुःख के उपाय को सुख का उपाय मानकर दुःख के कारणों में ही प्रवृत्ति करता है। इसी कारण अनादि काल से अभी तक प्रत्येक समय अनंत दुःख को भोगता आ रहा है। दुःख को दुःखरूप कब माने? जब भेदविज्ञान द्वारा अंतरंग में मैं अकेला पूर्ण ज्ञानानंद हूँ, उसमें निर्विकल्प शांतिरस का अनुभव करे, तब दुःख को दुःखरूप माने। इसप्रकार का अनुभव गृहस्थ अवस्था में भी हो सकता है; तिर्यंच, देव और नरक में भी हो सकता है।

श्रीमद् राजचंद्रजी ने 'जे स्वरूप समझ्या बिना पाम्यो दुख अनंत' ऐसा कहा है किंतु ऐसा नहीं कहा कि मैंने अमुक काम न किया, दया-दानादिक पुण्य नहीं किया; इसलिये मैंने दुःख भोगा। आत्मा अनादि से है; जो है, वह किसी समय न हो, ऐसा बनता ही नहीं। जो नहीं है, वह कभी नया नहीं होता; जो है, वह स्थिर रहकर अपनी अवस्था से अपने में ही अपनी शक्ति से बदलता है।

पैसा, शरीर, हाथ, पैर सब जड़ है, जड़-चेतन अनादि से ही भिन्न है। जीव स्वयं के यथार्थ स्वरूप को भूलकर पर को अपना मानकर चारों गतियों में भ्रमण करता है, वह पुण्य-पाप का फल है।

'वीत्यो काल अनंत ते कर्म शुभाशुभ भाव
तेह शुभाशुभ छेदतां उपजे मोक्ष स्वभाव'

शुभाशुभभाव का स्वामित्व मिथ्यात्व है। मिथ्यात्व ही संसार है। अज्ञानी, पुण्य से सुख मानता है, इसी से सिद्धभगवान के सुख की जाति संसारी जीवों के विषय जनित सुख जैसी मानता है, किंतु संसार का सुख तो हलाहल विष है।

इच्छा और आकुलता का अभाव तथा अतीन्द्रियज्ञान में लीन रहना, वह सुख है। शुभराग और उसके फल में तनिक भी सुख नहीं। मोटरवालों को सुखी मत मानो। विचार करो कि वे मोटर

में बैठे हैं या मोटर उनकी छाती पर बैठी है ? तेरे कल्पित वैभव को निभाने की, प्रतिष्ठा की तृष्णा में वे निरंतर दु:खी हैं। पुण्य–पाप दोनों को मलिन और दु:खरूप कहा है।

जिसप्रकार सूअर को विष्टा का भोजन रुचिकर लगता है और वह उसे उत्साह से खाता है—मनुष्य अनाज खाकर–पचाकर,.... विष्टा को निकाल देते हैं, उस विष्टा को सूअर खाता है। उसीप्रकार ज्ञानियों ने वीतरागता को पचाकर पुण्य–पाप को विष्टा की तरह छोड़ दिया है। विकारी भाव को जो उपादेय मानता है, उसको सूअर की उपमा दी गई है। अनंत बार अरबपति हुआ, अनंत बार जैनमत में द्रव्यलिंगी साधु हुआ लेकिन अंतरंग में रागादि विकल्प से पार मोक्षस्वभावी आत्मा क्या है और मोक्ष का उपाय क्या है, मलिनभावरूप आस्रव क्या है, उसको नहीं जाना। नव तत्त्वों के नाम जाने किंतु उनके स्वरूप का निर्णय कर उनके प्रयोजन को न जाने, तब तक आत्महित नहीं होता।

भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द से परिपूर्ण है। संयोग और विकार की दृष्टि को छोड़ो, पराश्रय की श्रद्धा छोड़कर स्वाश्रय की दृष्टि के द्वारा अपने परम स्वभाव को देखो। एकरूप पूर्णानंद ज्ञायक हूँ, ऐसा तू अनुभव कर और पुण्य–पाप दोनों दु:ख है, बंधन है; इसप्रकार निर्णय कर। वीतरागी दृष्टि होते ही शुभाशुभ दोनों का सर्वप्रथम श्रद्धा में एकदम त्याग हो जाता है। शुभराग को हितकर माननेवाले मिथ्यादृष्टि हैं। मिथ्या अभिप्रायरहित निर्मल ज्ञानानंद की श्रद्धा पूर्व में कभी भी नहीं की, इससे राग और उसके फल में ही उत्साह होता है।

जिसप्रकार सन्निपात का रोगी वात–पित्त और कफ के प्रकोप के कारण जोर–जोर से हँसता है, किंतु सुखी नहीं है, दूसरे उसे दु:खी ही मानते हैं, मूर्च्छा में वह हँसता है किंतु थोड़ी देर में वह मर जावेगा। इसप्रकार पुण्य और उसके फल में जो हर्ष मानते हैं, वे भी मूर्छित होते हुए मिथ्या–दर्शन, ज्ञान, चारित्ररूप त्रिदोष के प्रकोप के कारण असाध्य रोगी की तरह हैं।

पुण्य में सुख और सुख का कारण माननेवालों को ज्ञानी कहते हैं कि वह अपवित्र आस्रव तत्त्व है, उससे संवर, निर्जरा या मोक्षरूप पवित्र भाव की जाति भिन्न है, उसकी तुझे खबर नहीं है, इसकारण तू स्वर्ग के देवों के सुख से मोक्ष का सुख अनंतगुना कहता है। संसार के सर्व विभाव से पूर्ण निर्विकार मोक्षतत्त्व की जाति भिन्न ही है।

भगवान आत्मा में परिपूर्ण ज्ञानानंद शक्ति भरी है। देह से भिन्न प्रत्येक आत्मा अपने पूर्ण ज्ञानानंद शक्तिसहित है। उसमें एकपने की दृष्टि और एकाग्रता के बल द्वारा शुद्धता प्रगट होती है।

उस शुद्ध अंश से बंधन नहीं होता। बंधन तो शुभाशुभ राग, द्वेष और मोह से होता है।

अज्ञानी स्वर्ग के विषय संबंधी सुखाभास की और आत्मिक निराकुल मोक्ष सुख की एक जाति मानते हैं किंतु वे एक नहीं है परंतु जिसप्रकार तीर्थंकर भगवान की अतिशय सुंदर शरीर की प्रभा को सूर्य की उपमा दी जाती है, उसीप्रकार लोक के इन्द्रादि देवों के सुख की महिमा है, उससे भिन्न जाति का और उससे अनंत गुणा सुख मोक्षदशा में है—इस अपेक्षा ऐसी उपमा दी है। उसकी अज्ञानी को खबर नहीं है। स्वर्ग में आकुलतामय सुख का कारण शुभराग है और मोक्ष सुख का कारण तो वीतरागभाव है।

यहाँ प्रश्न:—तुम ऐसा कैसे कहते हो कि अज्ञानी की श्रद्धा में स्वर्ग सुख की जाति और मोक्ष सुख की जाति एक है?

उत्तर:—हाँ, उसके व्रत, दया, दान, पूजा, भक्ति आदि के शुभभाव हैं, उसका फल स्वर्ग सुख मानता है और उसी भाव का फल मोक्षसुख मानता है। जिसको थोड़ा पुण्य साधन होता है, उसको स्वर्ग मिलता है और जिसको बहुत साधन होता है, उसको मोक्ष मिलता है, इसप्रकार वह भ्रम से मानता है, परंतु श्रद्धा में क्या भूल है, उसकी उसको खबर नहीं है।

'द्रव्य क्रिया रुचि जीवड़ा, भाव धर्म रुचि हीन,
उपदेशक पण ते हवा शूं करे जीव नवीन।'

पुण्य में आत्महितरूप धर्म मानने से अनंतानुबंधी और दर्शनमोह का महान पाप होता है, पुण्य की क्रिया और देह की क्रिया से आत्मा को लाभ माने, उसको अतीन्द्रिय, वीतरागी ज्ञानानंद का अनुभव नहीं है, उसकी उसको तनिक भी खबर नहीं है। शुभरागरूप व्यवहार से धीरे-धीरे धर्म होता है, परम्परा से मोक्ष होता है, इसप्रकार अज्ञानी मानता है और उसीप्रकार माननेवाले भी उसको मिल गये अर्थात् पुण्य से और जड़ की क्रिया से धर्म मानने की उसकी श्रद्धा दृढ़ हो गयी, पुण्य करते-करते धर्म भी होता है और स्वर्ग के सुख भी मिलते हैं, इसप्रकार अज्ञानी मानता है किंतु हित-अहित के कारण और उसके फल की जाति बिल्कुल भिन्न है। इसप्रकार वह निर्णय नहीं करता।

जिसप्रकार जहाँ हजारों मन अनाज पैदा होता है, वहाँ भूसा न होता हो, ऐसा नहीं होता। हाँ, भूसा होता है किंतु दाना नहीं होता, ऐसा तो बनता है परंतु जहाँ अनाज हो, वहाँ भूसा तो होता ही है। कोई भी किसान भूसा के लिये बीज नहीं बोता। उसीप्रकार धर्मी जीव तो अपना स्वरूप पुण्य-पाप,

राग से भिन्न जानकर वीतराग दृष्टि और चारित्र प्रगट करता है, उसमें मोक्ष का फल पकता है, परन्तु जिसकी दृष्टि पुण्य ऊपर है, उसको संसार ही फलता है।

परलक्ष्य से राग मंद होता है किंतु राग टलता नहीं है। राग मंद करे तो पुण्य होता है, धर्म नहीं होता। पैसे से पुण्य नहीं होता। जितना लोभ मंद करे, उतना पुण्य होता है। यदि पैसा देने से ही धर्म होता हो तो निर्धन को तो रोना पड़े, किंतु ऐसा नहीं है, शरीर से तो आत्मा का धर्म नहीं होता किंतु शुभराग से भी धर्म नहीं होता। आत्मा अनंत गुणों का पिंड है, उसकी भेदज्ञानसहित निर्विकल्प श्रद्धा, ज्ञान और एकाग्रता करे तो धर्म होता है। जो राग शेष रहता है, वह धर्म नहीं किंतु अधर्म है। शुभराग भी चारित्र का दोष है, आत्मा का निवास स्थान नहीं है।

वास्तु किसमें करना? भगवान आत्मा चिदानंद अनंत गुण का धाम है, उसमें बसना, अतीन्द्रिय ज्ञान-आनन्द से परिपूर्ण स्वभाव की प्रतीति करके उसमें बसना, ये वास्तव में वास्तु है। संसार और उसका कारण आस्रव और बंधभाव है; मोक्ष और उसका कारण वीतरागी अबंध भाव है, इसप्रकार कारण-कार्य में अंतर होते हुए भी जो ऐसा नहीं मानता वह जीव, मोक्ष और स्वर्ग के साधन की एक जाति मानता है।

शुभाशुभभाव तो औपाधिक भाव हैं—व्यवहाररत्नत्रय शुभराग है, उसका त्रिकाली चैतन्य-स्वभाव में अत्यंत अभाव ही है किंतु स्वभाव के आश्रय से निश्चयरत्नत्ररूप वीतराग भाव प्रगट होता है, उसमें भी शुभ व्यवहार का अत्यंत अभाव है। गुणस्थानों की भूमिका के अनुसार जिस जाति का शुभराग होता है, उसको व्यवहार साधन उपचार से कहते हैं किंतु वह राग है; वीतरागता नहीं है। इसलिये प्रथम श्रद्धा में से सर्व राग का निषेध करके, स्वसन्मुखतारूप अंतर एकाग्रता के बल से शुभाशुभराग से दूर होकर निर्विकल्प परमानंदमय पूर्ण शुद्धता प्रगट करना, वह मोक्ष है। मोक्षमार्ग, वह अपूर्व शुद्धता है और मोक्ष, वह पूर्ण शुद्धता है।

‘मोक्ष कहा निज शुद्धता ते पामे ते पंथ,
समझाव्यों संक्षेप मां सकल मार्ग निर्ग्रंथ।’

अखंड ज्ञान-शांति के आराधक मुनि

संवर के मार्ग से नहीं डिगने के लिये-निर्जरा के लिये क्षुधा, तृषा, शीत, उष्ण, दंश आदि परीषहों को सहन करना चाहिये। तत्त्वार्थसूत्र (मोक्षशास्त्र) अध्याय १, सूत्र ८ श्री पूज्यपाद आचार्यकृत सर्वार्थसिद्धि टीका ऊपर से—

संवर—मिथ्यात्व, अविरत, प्रमाद, कषाय और योगरूप मलिनभावरूपी आस्रव, उसको निज शुद्धात्मा के अवलंबन के बल से रोकनेवाले शुद्धभाव-वीतरागभाव (जो चौथे गुणस्थान से प्रारम्भ होता है) उसे संवर कहते हैं।

निर्जरा—शुद्धि की वृद्धि और आंशिक अशुद्धता का अभाव करना-उसमें कुछ अंश पूर्व कर्मों का खिरना (नष्ट) होता है, उसको निर्जरा कहते हैं। संवर-निर्जरा, वह मोक्षमार्ग है; उसकी प्राप्ति भूतार्थ स्वभावी आत्मद्रव्य के उग्र अवलंबन द्वारा होती है, और उसका नाम सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की एकता है। जैसे अंधकार का अभाव, उसका नाम प्रकाश का सद्भाव; तैसे मोह-इच्छाओं का अभाव, उसका नाम ही निराकुल, अतीन्द्रिय आत्मिक सुख का सद्भाव है। दिगम्बर भावलिंगी जैन मुनियों को शुद्ध चिदानंद आत्मानुभव का अपूर्व आनन्द निरंतर चालू होने से तीन कषायरूपी आकुलता सर्वथा उत्पन्न ही नहीं होती; परंतु उसके स्थान में आत्मा बलवान होने के कारण अखंड आनन्द की शांति को ही अनुभवते हैं। तीनों काल में जैन मुनियों का स्वरूप ऐसा ही होता है। समस्त प्रकार के व्यापार से विमुक्त, चार प्रकार की आराधना में लवलीन, निर्ग्रंथ और निर्मोह ऐसा सर्व साधु होता है। साधु के २८ मूल गुण होते हैं।

सभी जैन साधु का स्वरूप—

जो निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञानसहित वैराग्यवान होकर, सम्पूर्ण परिग्रह का त्याग करके, शुद्धोपयोग द्वारा अपनी आत्मा का अनुभव करते हैं, परद्रव्य में अहंकारबुद्धि करते नहीं, ज्ञानादिक स्वभाव को ही अपना मानते हैं, परभावों में ममत्व नहीं करते, उनके हिंसा आदि अशुभ उपयोग का

तो अस्तित्व ही नष्ट हो चुका है, अनेक बार सातवें गुणस्थान के निर्विकल्प अतीन्द्रिय आनन्द में लीन होते हैं; जब छठवें गुणस्थान में आते हैं, तब २८ मूलगुणों को अखंडित पालने का विकल्प आता है और ऐसा ही जैनमुनि होता है (छट्ठा-सातवाँ गुणस्थान का उत्कृष्ट काल भी अंतर्मुहूर्त है) संयोग में एकताबुद्धिवाले जीव जैन मुनि को नग्नतादि देखकर दु:खी मानते हैं, और मोक्षमार्ग को कष्ट दाता मानते हैं, परन्तु ऐसा है ही नहीं; किंतु इच्छा और दु:ख के अभावरूप अपना आत्मा ही अत्यंत बलवान होकर ज्ञानानंद के अनुभव में मस्त रहते हैं, इसलिये उन्हें क्षुधादि निमित्त मिलने पर भी दु:ख का अनुभव नहीं होता।

कहा है कि जगत के जीव कोई तो बड़ा संग्राम भी जीतते हैं परंतु क्षुधाग्नि के बल के सामने वे सभी बलवान हार जाते हैं; राजा हो या रंक, तीव्र भूख के समय में आँखों में अँधेरा आता है, जैसे ज्वर चढ़ते ही शय्या पर पड़ जाते हैं, तैसे ही पड़ जाते हैं। क्षुधा की अग्नि दावानल जैसी होती है। देवों को भी भूख लगती है तो पशु-पक्षी बेचारा क्या करे? परंतु आश्चर्य है कि ऐसी भूख की वेदना मुनि ज्ञानानंदरूपी अमृत के अनुभव द्वारा सहज ही सहते हैं। किंचित् भी खेदखिन्न, शिथिल या मंद पुरुषार्थी होते नहीं। भैया भगवतीदासजी कहते हैं कि ऐसे मुनिश्वरों के चरण-कमल प्रति प्रतिदिन मैं हाथ जोड़कर नमस्कार करता हूँ।

दिगम्बर जैन साधु पद निर्ग्रंथ मुनि को ही होता है। साधुओं का भोजन गृहस्थों पर निर्भर है। भोजन के लिये कोई भी वस्तु उनके पास नहीं है, शरीर ऊपर वस्त्रादिक भी नहीं, शरीर मात्र उपकरण है। मल-मूत्र की शुद्धि के लिये ही कमण्डल और जीव रक्षा की यत्नाचार के लिये मोरपीछी होती है। अनशन, अवमौदर्य, वृत्तिपरिसंख्यान इत्यादि तप करते हैं अर्थात् इच्छारहित सहज आनन्द में लीनता का प्रयोग बढ़ाते हैं—उसमें भी दो-तीन दिन से लेकर पक्ष-मास व्यतीत हो जाते हैं। जो मुनि के योग्य शुद्ध आहार अंतरायरहित योग्य काल में, योग्य क्षेत्र में नहीं मिले तो भिक्षा को ग्रहण नहीं करते। चित्त में किंचित् भी विषाद-खेद नहीं करते, धैर्य धारण करते हैं। यद्यपि मुनियों के भूख, तप से हाड-चाम नख कलेवर मात्र (मुर्दा जैसी) देह रह गई है तो भी निश्चय-व्यवहार छह आवश्यक क्रियाओं को किंचित्मात्र भी नहीं घटाते। अत्यंत क्षुधारूपी अग्नि प्रज्वलित होते हुए भी धैर्यरूपी जल के द्वारा उसको शांत कर देते हैं। अतीन्द्रिय ज्ञानानंद में एकाग्रता के बल से, क्षुधादि संबंधी आकुलता को उत्पन्न नहीं होते देते—ऐसे मुनियों को क्षुधादि परीषहों का सहन होता है।

प्रश्न—इस क्षेत्र में ऐसे मुनि न मिले तो जैसा मिले तैसे को मुनि-गुरु मानना कि नहीं?

उसके समाधान में—स्व० पंडित टोडरमलजी ने कहा है कि इस क्षेत्र में हंस पक्षी का सद्भाव न होवे तो कौआ को हंस कैसे माना जावे? सर्वज्ञ वीतराग कथित शास्त्र में जैसा जैन मुनियों का स्वरूप बताया है, ऐसा यथार्थ लक्षण सहित होवे उसको ही मुनि मानना चाहिये।●●

स्वाश्रयी भाव मुक्ति का कारण

मैं एक अखण्ड ज्ञायकमूर्ति हूँ, पराश्रय रहित अकेला स्वावलंबी पूर्णज्ञानस्वभावी अनादि-अनंत हूँ, किसी परद्रव्य, परक्षेत्र, परकाल, परभाव और विकल्प का एक अंश भी मेरा नहीं है, मेरा आत्मा ही मेरे लिये ध्रुव है, शरणरूप है, ऐसा स्वाश्रयभाव का रहना मोक्ष का कारण है, और विकल्प-राग का एक अंश भी मुझे आश्रयरूप है, ऐसा पराश्रय भाव रहे, वह बंध का कारण है।

ध्यान रखना...!

आत्मद्रव्य एकरूप ज्ञायकरूप से वर्तमान में पूर्ण है; उस ध्रुवस्वभाव की दृष्टि वह सम्यक्-दृष्टि है। ध्यान रखना कि यह अलौकिक वस्तु है! अनंत काल से स्वभाव की बात समझ में नहीं आई है; इसलिये वस्तु की परम गंभीर महिमा लाकर, लक्ष रखकर समझना चाहिये। वस्तु की श्रद्धा के बिना सम्यग्ज्ञान-चारित्र नहीं हो सकता। 'यह कठिन है, इसलिये समझ में नहीं आता'—इस बात को हृदय से निकाल देना। अनादि से अनभ्यास है, इसलिये आत्मस्वरूप को समझना कठिन लगता है; किंतु यदि उसकी परम महिमा लाकर समझना चाहे तो स्व-विषय है, इसलिये समझ में आयेगा ही। (समयसार-प्रवचन से)

इन्दौर में आध्यात्मिक सत्पुरुष श्री कानजीस्वामी की
जयंती का विशाल समारोह

दिनांक २५ अप्रैल १९६३ को, वैशाख सुदी दोज को इस वर्ष इन्दौर में श्री कानजी स्वामी की ७४ वीं वर्ष ग्रंथी का आयोजन बहुत ही विशालरूप से मनाया गया। प्रात: से ही जन समुदाय उल्लासपूर्वक अपने मार्गदर्शक गुरुदेव की जयंती समारोह मनाने को उत्साही था। प्रात: श्री लश्करी मंदिर में अभिषेक, पूजा एवं शास्त्र प्रवचन का कार्य हुआ। मध्याह्न में श्री मारवाड़ी मंदिर में तत्त्वचर्चा एवं जिनेन्द्र भक्ति का कार्य हुआ। सामूहिक भक्ति एवं एक लय से जिनगुणानुवाद का स्मरण भक्तों को विभोर कर रहा था। रात्रि को शास्त्र प्रवचन एवं मध्यप्रदेश के वित्तमंत्री आदरणीय श्री मिश्रीलालजी गंगवाल के नेतृत्व में एक सभा की गई। जिसमें श्री स्वामीजी के गुणानुवाद, उनका मार्ग दर्शन आदि आध्यात्मिक विषयों पर कई वक्ताओं के बहुत ही सारगर्भित भाषण हुए। एक प्रस्ताव द्वारा स्वामीजी के दीर्घायु के लिये शुभकामना की गई एवं तार द्वारा शुभसंदेश सोनगढ़ एवं लाठी (जहाँ महाराज का विहार हो रहा है) भेजा गया। इसप्रकार इस वर्ष का यह आयोजन बहुत ही सार पूर्ण रूप से मनाया गया। उत्सव में जैन-जैनेतर, जनसमुदाय ने भाग लिया। [लगभग इसप्रकार बंबई, अहमदाबाद, दिल्ली, कलकत्ता, भोपाल, उज्जैन, गुना आदि से समाचार आये हैं।]

लकड़वास (उदयपुर)

यहाँ पर भगवान श्री महावीर जयन्ती और बाद में पूज्य स्वामीजी की जन्म-जयन्ती का ७४वाँ वर्ष ग्रंथी का उत्सव व आयोजन विशेष ढंग से मनाया गया था। उदयपुर से दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल भी यहाँ पधारे थे। सोनगढ़ से श्री किरणमाला बहिन ने यहाँ आकर पाठशाला चालू करके बहुत प्रशंसनीय जागृति की है, तत्त्वज्ञान को उत्तम और सुगम शैली द्वारा समझाती हैं, बालक और स्त्री समाज ने ज्यादा लाभ लिया है। पूज्य स्वामीजी का अनेक प्रकार गुणानुवाद करके सभी ने उपकार माना था। उत्सव में समस्त ग्राम निवासियों ने बहुत संख्या में भाग लिया था।

चंद्रसेन बंडी, नेमीचंद जैन

इन्दौर में श्री कानजी स्वामी का आगमन

श्री कानजी स्वामी ने विहार के समय इन्दौर समाज की प्रार्थना को मान देकर दिनांक

श्री सीमंधर भगवान का भव्य जिन मंदिर सोनगढ़

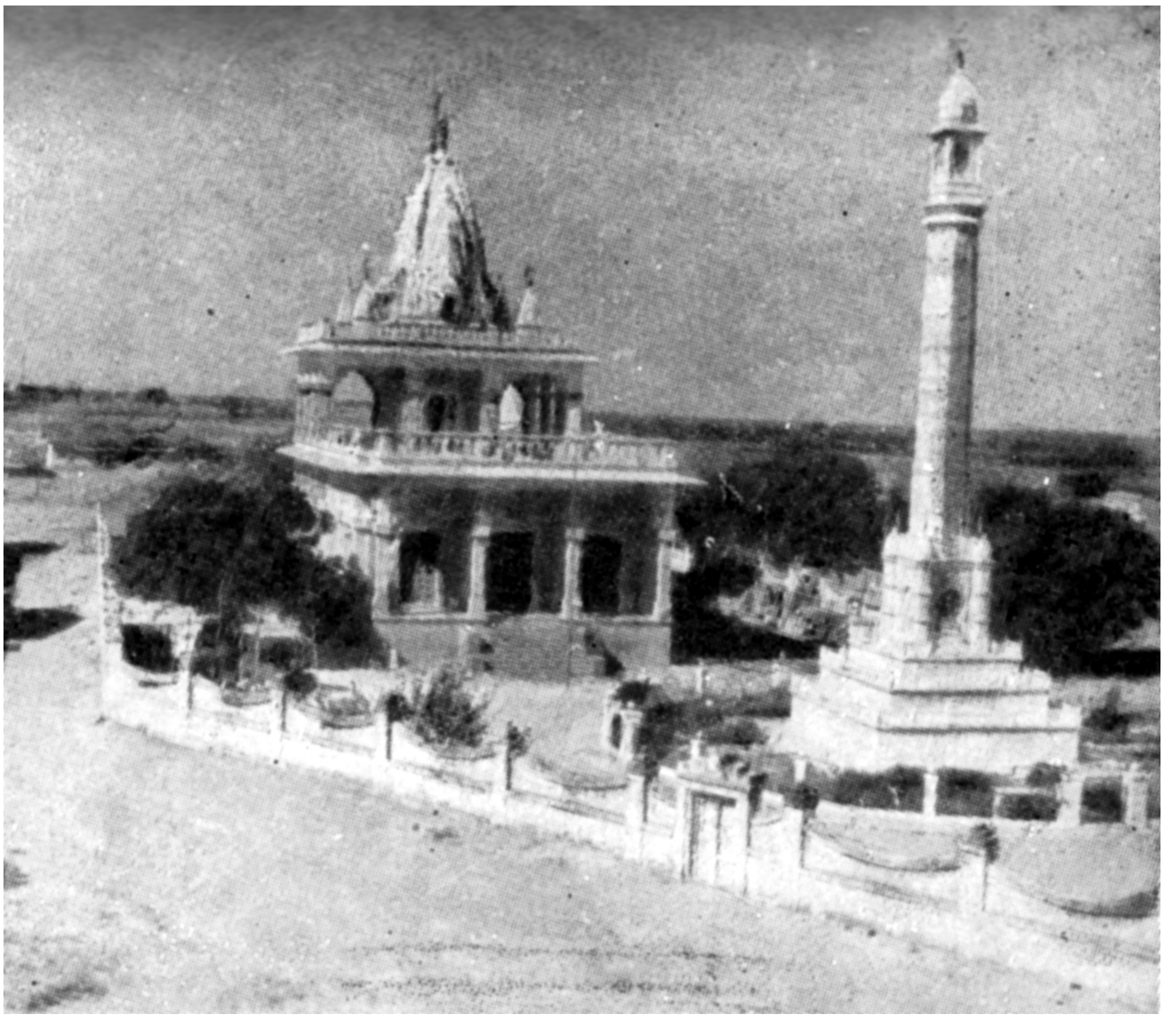

श्री मानस्तंभजी सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

२९-३०-३१ मई व १ जून १९६३ को इन्दौर पधारने की स्वीकृति प्रदान की है। इस अवसर पर विशाल समारोह का आयोजन किया जा रहा है। स्वामीजी के प्रवचनों का एंव समारोह का विशेष लाभ लेने के लिये इन्दौर पधारने की सर्व-इच्छुक कृपा करें।

जे. लालचन्द
श्री दिगम्बर जैन समाज, इन्दौर

★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★

नया प्रकाशन जो तैयार है

लघु जैन सिद्धान्त प्रवेशिका (चौथी आवृत्ति)

जैनधर्म में अच्छी तरह सुगमरीत्या प्रवेश पाने के लिये, शास्त्राधार सहित और संक्षेप में खास प्रयोजनभूत तत्त्वज्ञान की जानकारी के लिये यह उत्तम मार्गदर्शक प्रवेशिका है। सर्वांग सुंदर बुक है, प्रत्येक पाठशाला में तथा धर्म जिज्ञासुओं में आमतौर से ठोस प्रचार में लाने योग्य साहित्य हैं। पृष्ठ संख्या ११५, मूल्य ०-२५ पोस्टेजादि अलग, पता दिगम्बर स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़ (सौराष्ट्र) (बंबई, अहमदाबाद, दिल्ली, भोपाल, उज्जैन, अशोकनगर, गुना, इन्दौर, उदयपुर आदि जहाँ मुमुक्षु मंडल है, वहाँ भी मिलेंगे।)

★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★

भेदविज्ञान का बल

निज महिम रतानां भेदविज्ञानशक्त्यां
भवति नियतमेषां शुद्धतत्त्वोपलंभः।
अचलितमखिलान्यद्रव्य दूरे स्थितानां
भवति सति च तस्मिन्नक्षयः कर्ममोक्षः ॥१२८॥

अर्थ—जो भेदविज्ञान की शक्ति के द्वारा अपनी (स्वरूप की) महिमा में लीन रहते हैं, उन्हें नियम से शुद्ध तत्त्व की उपलब्धि होती है; शुद्ध तत्त्व की उपलब्धि होने पर, अचलितरूप से समस्त अन्य द्रव्यों से दूर वर्तते हुए ऐसे उनको अक्षय कर्म मोक्ष होता है (अर्थात् उनका कर्मों से ऐसा छुटकारा हो जाता है कि पुनः कभी कर्मबंध नहीं होता)।

पुनीत विहार के समाचार

परमोपकारी संत, अध्यात्मयोगी पूज्य कानजी स्वामी का पुनीत विहार सौराष्ट्र में हो रहा है, धर्म जिज्ञासुगण बड़ी संख्या में एकत्र होकर स्वामीजी के प्रवचन-तत्त्वज्ञान चर्चा का लाभ ले रहे हैं। हरेक गाँव में समयसारजी शास्त्र पर प्रवचन करते हैं, समाज में तत्त्व-चर्चा को समझनेवालों की तैयारी हो रही है।

बांकानेर—

छह दिन ठहरे, चैत्र सुदी १३ महावीर प्रभु का जन्म कल्याणक जयन्ती महोत्सव आनंदोल्लास पूर्वक मनाया गया, जिनेन्द्र भगवंतों की प्रतिष्ठा का वार्षिक दिवस भी उसी दिन था, ध्वजारोहण माननीय प्रमुख श्री नवनीतभाई के शुभहस्त द्वारा हुआ, पूज्य बहिनश्री चंपाबहिन की ओर से चाँदी के पुट्ठावाला समयसारजी शास्द्ध, पूज्य स्वामीजी के हाथ से स्वस्तिक कराकर जिनमंदिर में स्थापन कराया गया, जैन स्वाध्याय मंदिर का शिलान्यास श्री खेमचंदभाई शेठ द्वारा हुआ, उस काम के लिये करीब ३३,००० की रकम जिनमंदिर को भेंट मिली है, शिलान्यास बाद जिनेंद्र भगवान की भव्य रथयात्रा निकाली थी। दोपहर के प्रवचन बाद जिन मंदिर में हमेशा मुजब वीर प्रभु की अद्‌भुत शांति वैराग्यमय भावों से भीगी हुई भक्ति हुई थी। बाहर गाँवों से बड़ी संख्या में मेहमान आये थे।

जामनगर—

बहुत बड़ा शहर है, जनसंख्या दो लाख से ज्यादा है, महामनोज्ञ विशाल जिनमंदिर दो साल से बना है, पूज्य स्वामीजी का बड़ा भारी स्वागत, मंगल प्रवचन बाद चार दिन तक श्रोताओं की संख्या दिन में तीनों समय ५०० से बढ़कर १५०० तक थी। वैशाख वदी दूज चेला गाँव में स्वामीजी पधारे, वहाँ प्रवचन में दो हजार उपरांत संख्या थी। बड़ा भारी उत्साहमय उत्सव हुआ।

गोंडल—

जनसंख्या ४६ हजार उपरांत यहाँ नया जिनमंदिर है। किसान बंधु बड़ी संख्या में दिगम्बर जैन धर्म में श्रद्धावान हुए हैं, जो हमेशा तत्त्वज्ञान का अभ्यास करते ही हैं।

जेतपुर—

जनसंख्या ४५ हजार यहाँ नया जिनमंदिर है, यहाँ प्रवचन में, तत्त्वचर्चा में लाभ लेनेवालों

की संख्या ज्यादा थी—जिनमंदिर जिन प्रतिमाजी बहुत खास मनोज्ञ हैं, यहाँ चाँदी में खुदे हुये श्री पंचास्तिकाय समयसारजी शास्त्र जो अनुपम कलामय शैली में लिखा हुआ है, उन शास्त्रजी की प्रतिष्ठा पूज्य स्वामीजी के सुहस्त द्वारा हुई। तारीख १४-४-६३ वदी पंचमी यहाँ से शाम को श्री गिरनारजी सिद्धक्षेत्र की वंदनार्थ पूज्य स्वामीजी पधारे थे। पहाड़ की वंदना करके नीचे जिनमंदिर में भगवान की भक्ति करने में आई। वंदन नमस्कार और परम दिगम्बर मुनियों का स्मरण किया, पूज्य स्वामीजी कहते थे कि यहाँ श्री नेमिनाथ प्रभु का अनुपम वैराग्य के झरनों से भरा हुआ दिव्य जीवन दृष्टि के सामने आ रहा है, अहो..... इस पर्वत पर महा निःष्क्रमण (दीक्षा) कल्याणक के समय तो नेमिकुमार प्रभु का देह अनेक अलंकारों से विभूषित होगा और पालकी के नीचे उतरे तब परम दिगम्बर। उन्हीं के पास इन्द्र, बलदेव, वासुदेव, यहाँ समवसरण में आते थे, शंबुकुमार, प्रद्युम्न-अनिरुद्धकुमार आदि राजकुमार महान वैराग्य से दीक्षा धारण कर विचरे थे, अचल अनुपम सिद्ध परमात्मदशा को पाये थे। धन्य इस सुमांगलिक द्रव्य-क्षेत्र-काल और आराधक भाव को.....

वडीया—

जनसंख्या १० हजार, यहाँ नया जिनमंदिर है। नये शिखर पर ध्वजारोहण विधि, मंडल विधान पूजा-प्रवचन तत्त्वचर्चा और भक्तराज सेठ जी उत्तमचंदभाई द्वारा अनुपम भजन कीर्तनमय भक्ति जो हमेशा याद रहेगी।

वींछिया—

जनसंख्या ७०००, यहाँ विशाल जिनमंदिर दो मंजिल का है। स्वाध्याय मंदिर भी है हरेक गांव के समान यहाँ भी सब बातों में भारी उत्साह था।

लाठी (कलापीनगर)—

जनसंख्या १२ हजार, यहाँ जिनमंदिर में नया शिखर बनाया है। कलश तथा ध्वजारोहण विधि वैशाख सुदी १ के दिन हुई। बड़े भारी जुलूसरूप में जिनेंद्र रथयात्रा निकाली थी, यागमंडल विधान पूजा, जाप्य, यज्ञ विधि हुई। यहाँ नया स्वाध्याय मंदिर बना है, शास्त्रजी की स्थाना हुई तथा परमोपकारी पूज्य स्वामीजी का वैशाख सुदी दूज का जन्म-जयन्ती महा महोत्सव मनाया गया। बाहर गाँव से हजारों की संख्या में मेहमान पधारे थे, सारा दिन व रात्रि को ९ बजे तक धार्मिक उत्सव के कार्यक्रम थे, दो बार पूज्य स्वामीजी का प्रवचन तथा रात्रि को तत्त्वज्ञान चर्चा।

सुरेन्द्रनगर—

तारीख २६ से तारीख २९-४-६३ तक। जनसंख्या ५०हजार। यहाँ जिनमंदिर तथा स्वाध्याय मंदिर है हरेक स्थान के माफिक बड़ा शानदार स्वागत हुआ। प्रवचन, रात्रिचर्चा, उपरांत यहाँ जिनमंदिर की वर्षगाँठ का उत्सव था।

जिनेन्द्र पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महामहोत्सव

जोरावरनगर—

(सौराष्ट्र-सुरेन्द्रनगर) तारीख ३०-४-६३ से तारीख ६-५-६३ वैशाख सुदी १३ पंचकल्याणक प्रतिष्ठा विधि समान हुई। उत्सव के विशेष समाचार संक्षेप में आगामी अंक में देंगे।

टेप रेकोर्डिंग रील द्वारा प्रवचन प्रचार

परमोपकारी पूज्य कानजी स्वामी के आध्यात्मिक प्रवचनों का प्रचार दो साल से सुचारूरूप से चल रहा है। जिन-जिन गाँवों से आमंत्रण आते हैं, वहाँ श्री मधुकरजी को भेजने में आता है। पूज्य स्वामीजी ने विशाल जैन संघ सहित तीर्थयात्रा की थी, तथा पंचकल्याणक महोत्सव उसकी रंगीन फिल्म भी टेपरील रेकोर्डिंग के कार्यक्रम के साथ जेठ मास से भेजने का विचार किया है। मधुकरजी ने पाँचवीं बार के दौरे में ललितपुर, जयपुर, कोटा, बारानू, खानपुर, चांदखेड़ी, विदिशा, पानीपत, सिलवानी, जलगाम, पारीला, खंडवा और मलकापुर तक के कार्यक्रम रखे थे। वह पूर्ण हो गये हैं, अब वैशाख सुदी ८ से १३ जिनेन्द्र पंच कल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव पर जोरावरनगर (सौराष्ट्र) आवेंगे। बाद नया कार्यक्रम होगा। तारीख १-५-६३

ब्रह्मचारी गुलाबचंद जैन
पत्र व्यवहार-प्रवचन प्रचार विभाग
श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट,
पोस्ट सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

[अष्टाह्निकादि उत्सव पर बुलाने से वक्ताओं को भी भेजते हैं। जिनके पास टेपरील मशीन हो, उनको प्रत्येक टेप का २५) डिपाजिट से प्रवचनों की टेपरीलें भी भेजते हैं।]

महत्वपूर्ण कार्य कौन सा है?

अनादि–अनंत आत्मा को जो एकरूप, अखंड, अभेद ज्ञायकरूप से जाने, उसी ने उसका वास्तविक स्वरूप जाना कहा जाता है। जिसके ध्यान में आत्मा का अखंडस्वरूप नहीं है, उसे उसका यथार्थ ज्ञान नहीं होता। 'अनादि–अनंत' कहने से काल पर लक्ष न देकर अनंत गुण का अखंड पिण्ड अपनेरूप से त्रिकाल स्थित रहनेवाला, वर्तमान में पूर्ण शक्तिरूप ध्रुव है, उसे लक्ष में लेना चाहिये। उसमें तीनों काल की अनंत शक्ति वर्तमान में अभेदरूप से विद्यमान है।—ऐसे अखंड द्रव्यस्वभाव की दृष्टि की सम्यग्दृष्टि है।

परसंयोग की अपेक्षा छोड़कर और वर्तमान अवस्था के भेद को गौण करके, वर्तमान अवस्था के पीछे जो सामान्य त्रिकाली शुद्ध श्रद्धा–ज्ञान और आनन्दादि अनंत गुणों से परिपूर्ण अखंड स्वरूप है, उसका लक्ष करने से अखंड ज्ञायकरूप से जो ज्ञात हुआ, वही परमार्थस्वरूप आत्मा है। ज्ञायकरूप से ज्ञात हुआ वही मैं हूँ—ऐसा अंतर से मानना, वह सम्यग्दर्शन है। मैं अखंड ज्ञायकज्योति एकरूप हूँ; अनंत काल स्थित रहनेवाला वर्तमान मैं परिपूर्ण हूँ—इसप्रकार प्रगट शुद्ध ज्ञायकभाव को लक्ष में लेकर अंतर में अनुभव से जानना, वह सम्यग्ज्ञान है। इसमें जो गूढ़ था, उसे अत्यंत स्पष्ट करके कहा है; परंतु उसे हाथ में लेकर नहीं बतलाया जा सकता; क्योंकि वस्तु तो अंतर अनुभव का विषय है। स्वयं तैयार होकर, ग्रहण करके, गले उतारकर अंतर में पचाये तो अवश्य गुण होगा।

ऐसा वस्तुस्वरूप समझना ही वास्तव में महत्वपूर्ण कार्य है। आत्मा का निरपेक्ष, अभेद, पूर्णस्वभाव वर्तमान में साक्षात् शुद्धरूप से जैसा है, वैसा अनादिकाल से लक्ष में नहीं लिया है। पर से भिन्न एकत्व की बात कभी प्रीतिपूर्वक सुनी भी नहीं है, इसलिये समझना कठिन लगता है परंतु 'समझने पर सब सरल है।' सम्यग्दर्शन प्रगट करने के लिये प्रारम्भ में ही समझने की यह बात है। वर्तमान में प्रतिसमय आत्मा पूर्णस्वरूप होने से उसी की श्रद्धा का विषय (लक्ष्य, ध्येय) बनाकर शुद्ध अखंडरूप से लक्ष में लेना योग्य है। वह शुद्ध आत्मा ही सम्यग्दर्शन का विषय है। वर्तमान विकारी अवस्था तथा अपूर्ण निर्मल पर्याय को गौण करके वर्तमान प्रवर्तित एक–एक अवस्था के साथ ही प्रत्येक समय में अनंत चैतन्यशक्तिरूप जो पूर्ण सामान्य ध्रुवस्वभाव है, वह धर्मी जीव की दृष्टि का विषय है। उस पर दृष्टि करके उसे लक्ष में लेना वह सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान है तथा वही धर्मी जीव का कर्तव्य है। [समयसार–प्रवचन से] ●●

ज्ञानस्वभाव और ज्ञेयस्वभाव

(दूसरी आवृत्ति)

धर्म जिज्ञासुओं के लिये महान उपकारी साहित्य जो जैनधर्म का महत्वपूर्ण तात्त्विक और प्रयोजनभूत ग्रंथ है। जो जिज्ञासुओं के लिये सर्व समाधानरूप अपूर्व वस्तुस्वभाव के ज्ञानमय तत्त्वदृष्टि प्रगट करनेवाली महान चीज़ है। इसके मुख्य विषय—

१– क्रमबद्धपर्याय के स्वरूप का विस्तारपूर्वक स्पष्टीकरण तथा उनमें दोष कल्पना का निराकरण है।

२– सम्यक् अनेकांत गर्भित सम्यक् नियतवाद–जिसमें पुरुषार्थ, स्वभाव, काल, नियति और कर्म—ये पंच समवाय और क्रमबद्ध के निर्णय में स्वसन्मुख होने का सच्चा पुरुषार्थ तथा अनेकांत।

३– अनेकांत, निमित्त–उपादान, निश्चय–व्यवहार।

४– द्रव्य पर्याय संबंधी अनेकांत।

५– अनंत पुरुषार्थ।

६– वस्तुविज्ञान अंक जिसमें श्री प्रवचनसारजी गाथा ९९ के ऊपर पूज्य श्री कानजी स्वामी द्वारा प्रवचनों का सार है।

७– आत्मा कौन है और कैसे प्राप्त हो, इस विषय में प्रवचनसार शास्त्र में ४७ नयों द्वारा आत्मद्रव्य का वर्णन है, उस पर खास प्रवचनों का सार–[जिसमें नियतनय, अनियतनय, कालनय, अकालनय से वर्णन है] बढ़िया जिल्द, सुंदर कागज व आकर्षक बढ़िया टाइप में उत्तम छपाई है, पत्र संख्या ४००, मूल्य २–५० नये पैसे। ५० पुस्तक लेने पर १० टका के हिसाब से कमीशन देंगे। इस पुस्तक की छपाई, कागज, बाइंडिंग आदि सर्वोत्तम होने पर भी लागत से डेढ़ रुपया कम मूल्य रखा गया है।

पता—**श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट**

सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

परमपूज्य श्री कानजी स्वामी के आध्यात्मिक वचनों का अपूर्व
लाभ लेने के लिये निम्नोक्त पुस्तकों का—

अवश्य स्वाध्याय करें

पंचास्तिकाय	४ ॥)
नियमसार	५ ॥)
समयसार, पृष्ठ ६१६ बड़ा साइज	५)
मूल में भूल (नई आवृत्ति)	।।)
श्री मुक्तिमार्ग	॥=)
श्री अनुभवप्रकाश	॥)
श्री पंचमेरु आदि पूजासंग्रह	।।।)
समयसार प्रवचन भाग १	४ ॥)
समयसार प्रवचन भाग २	५ ।)
समयसार प्रवचन भाग ३	४ ॥)
समयसार प्रवचन भाग ४	४ ॥)
प्रवचनसार	५)
अष्टपाहुड़	३)
मोक्षमार्ग-प्रकाशक की किरणें प्र०	१ ।=)
द्वितीय भाग	२)
जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तरमाला प्र०	॥-)
द्वितीय भाग	॥-)
तृतीय भाग	॥-)
जैन बालपोथी	।)
छहढाला मूल	१५ नये पैसे
दसलक्षण व्रत विधानपूजा	०-७५
ज्ञानस्वभाव ज्ञेयस्वभाव	२ ॥)
मोक्षशास्त्र बड़ी टीका सजिल्द	५)
सम्यग्दर्शन (तीसरी आवृत्ति)	१.८५)
छहढाला (नई टीका)	८७ नये पैसे
जैन तीर्थ पूजा पाठ संग्रह सजिल्द	१ ।=)
अपूर्व अवसर प्रवचन और श्री कुंदकुंदाचार्य द्वादशानु.	८५ नये पैसे
भेदविज्ञानसार	२)
अध्यात्मपाठसंग्रह	५)
निमित्तनैमित्तिक संबंध क्या है ?	=)
स्तोत्रत्रयी	॥)
लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका	=)
'आत्मधर्म मासिक' लवाजम-	३)
आत्मधर्म फाइल वर्ष १-३-५-६-७-८-१०-११-१२-१३ वर्ष	३ ।।।)
शासन प्रभाव	=)

[डाकव्यय अतिरिक्त]

मिलने का पता—
श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

मुद्रक—नेमीचन्द बाकलीवाल, कमल प्रिन्टर्स, मदनगंज (किशनगढ़)
प्रकाशक—श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट के लिये—नेमीचन्द बाकलीवाल।